# भगवान महावीर

और

# उनकी अहिंसा



*"अपने मन, वाणी और शरीर के द्वारा, जान-बूझ कर तथा असावधानी से भी, किसी भी प्राणी को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचाना और इसी भावना के अनुरूप अपने नित्य कर्म बहुत सावधानीपूर्वक करना ही अहिंसा है।"*

प्रकाशक
प्रेम रेडियो एण्ड इलेक्ट्रिक मार्ट
महालक्ष्मी मार्केट, भागीरथ पैलेस,
चांदनी चौक, दिल्ली-११०००६

## दो शब्द

आज दिन प्रतिदिन मांसाहार का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। इसके कई कारण हैं।

आज के नवयुवक मांसाहार को आधुनिकता तथा प्रगतिवादी होने का चिन्ह समझते हैं, इसलिये वे बहुत तेज़ी से मांसाहार की ओर बढ़ रहे हैं।

मांसाहार देश, विदेश में सभी स्थानों पर सहज ही में उपलब्ध हो जाता है। घर से बाहर निकलकर एक शाकाहारी व्यक्ति, शुद्ध व पवित्र शाकाहार सुलभ न होने के कारण, कदाचित भूखा भी रह जाये, परन्तु मांसाहारी व्यक्ति को कभी कोई कठिनाई नहीं होती।

हमारे शासकों की ओर से भी, अन्न की कमी का कारण बताकर, मांसाहार को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है, इसके लिये प्रचार किया जा रहा है तथा मांस का उत्पादन बढ़ाने के लिये करोड़ों रुपया व्यय किया जा रहा है।

"सम्बन्धित अधिकारियों को खिलाने-पिलाने से काम निकाला जा सकता है," "क्लबों व होटलों में जाने-आने से नये-नये मित्र बनाये जा सकते हैं तथा अपने व्यापार में उन्नति की जा सकती है," ऐसे विचारों ने भी मांसाहार को प्रोत्साहन दिया है।

"मांसाहार शक्तिवर्द्धक व सुस्वादु है" यह तथा ऐसी

ही कई अन्य भ्रान्तियां भी मांसाहार के पक्ष में फैली हुई हैं।

इन सबको दृष्टि में रखते हुए बहुत दिनों से हृदय में यह भावना थी कि एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित की जाये, जिसमें मांसाहार के विरुद्ध वैज्ञानिक व तर्कसम्मत विवेचन हो; क्योंकि आज के नवयुवकों पर धर्म की अपेक्षा विज्ञान व तर्क के आधार पर कही हुई बात का अधिक प्रभाव पड़ता है। इन्हीं तथ्यों को दृष्टि में रखकर यह छोटा सा प्रयास किया है।

मांसाहार और हिंसा का चोली दामन का सा साथ है, इसलिये इस पुस्तक में हिंसा व अहिंसा की विवेचना भी की गई है।

पिछले २,५०० वर्षों की अवधि में भगवान महावीर अहिंसा के सबसे बड़े पालक व प्रचारक हुए हैं; अतः भगवान महावीर के सम्बन्ध में भी संक्षेप में कुछ लिखा गया है जिसके बिना यह पुस्तक अपूर्ण ही रहती।

मैं कोई साहित्यिक विद्वान अथवा सिद्धहस्त लेखक नहीं हूं, इसलिये यह कोई साहित्यिक कृति नहीं है। जैसा मैंने देखा, समझा और ठीक जाना है, उसी को अपनी भाषा में लिख दिया है। कह नहीं सकता कि मेरा यह प्रयास कहां तक सफल होगा? फिर भी यदि थोड़े से नवयुवकों के भी मांसाहार व हिंसा के सम्बन्ध में उनके विचार परिवर्तन करने में यह पुस्तक सहायक हुई तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूंगा।

—लेखक

भगवान महावीर के २,५००वें निर्वाण महोत्सव के शुभ अवसर पर "भगवान महावीर और उनकी अहिंसा" का तीसरा संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष है। जैन व अजैन पाठकों तथा पत्र-पत्रिकाओं द्वारा पिछले दो संस्करणों का पर्याप्त स्वागत हुआ था। पाठकों के इस उत्साहपूर्ण स्वागत के कारण ही यह तीसरा संस्करण प्रस्तुत करना सम्भव हुआ है। इस पुस्तक को और भी अधिक उपयोगी बनाने की दृष्टि से यत्र-तत्र कुछ प्रसंग बढ़ाये गये हैं। आशा है कि इस पुस्तक से जनसाधारण को भगवान महावीर के सिद्धान्तों को समझने तथा उनकी शिक्षाओं व उनके द्वारा प्रतिपादित अहिंसा धर्म का पालन करने की प्रेरणा मिलेगी।

—प्रकाशक

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुण लब्धये ॥

जो मोक्ष मार्ग के नेता हैं, (जो स्वयं मोक्ष मार्ग पर चलकर मुक्त हुए और संसार के समस्त प्राणियों को भी वह मुक्ति का मार्ग दिखला गये),

जो कर्म रूपी पर्वतों का भेदन करने वाले हैं (जिन्होंने अपने समस्त कर्म नष्ट कर दिये हैं),

जो विश्व के समस्त तत्त्वों को जानते हैं (जो संसार के जड़ व चेतन समस्त पदार्थों की भूत, वर्तमान व भविष्य तीनों कालों की समस्त अवस्थाओं को जानते हैं),

उनको मैं उन गुणों की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूं। (मैं उनको इसलिये नमस्कार करता हूं कि उन गुणों को प्राप्त कर मैं भी मोक्ष प्राप्त कर सकूं)।

*

जिनने रागद्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया;
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उनको स्वाधीन कहो;
भक्ति भाव से प्रेरित हो, यह चित्त उन्हीं में लीन रहो।

# अहिंसा के अग्रदूत भगवान महावीर

भगवान महावीर का जन्म लगभग ६०० वर्ष ईसवी पूर्व बिहार प्रदेश में हुआ था। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ था और वे ज्ञातृवंश के क्षत्रिय तथा कुण्डपुर के राजा थे। उनकी माता का नाम त्रिशला था और वे वैशाली के राजा चेटक की सुपुत्री थीं।*

भगवान महावीर बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि और चतुर थे। बाल्यकाल में भी उनका मन बाल सुलभ मनोरंजनों में नहीं लगता था। उनका अधिकतर समय विद्याध्ययन, चिंतन और मनन में ही व्यतीत होता था। कुमार-अवस्था को पार कर युवावस्था में प्रवेश करने पर भी उनका मन सांसारिक सुखों की ओर नहीं गया। संसार के प्राणियों को दुखी देखकर उनका मन व्याकुल रहता था और वे संसार के दुखों के कारण और उनको दूर करने के उपाय खोजने के प्रयत्नों में लगे रहते थे। अपना सारा समय इन्हीं प्रयत्नों में लगाने के लिये उन्होंने घर बार छोड़कर साधु जीवन

* पुरानी परम्परा के अनुसार भगवान महावीर का जन्म स्थान राजगृह नगर से कुछ मील दूर कुण्डलपुर माना जाता था। परन्तु नई खोजों के अनुसार भगवान महावीर का जन्म स्थान मुज़फ़्फ़रपुर जिले में वैशाली के पास कुण्डपुर (जिसको आजकल वासुकुण्ड कहते हैं) माना जाता है। वहां के निवासी इस स्थान को बहुत पवित्र मानते हैं तथा उस भूमि पर खेती भी नहीं करते।

व्यतीत करने का निश्चय किया। माता की ममता और पिता का प्यार भी उनको अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सके। अन्ततः तीस वर्ष की भरी जवानी में वे घर बार छोड़कर साधु जीवन व्यतीत करने लगे। उनका अधिकांश समय इसी बात के चिंतन में व्यतीत होता था कि संसार के दुखों का कारण क्या है? और इन दुखों को दूर कर, अनन्त व सच्चा सुख कैसे प्राप्त किया जा सकता है? अपने साधना-काल में ही उन्हें इस बात का दृढ़ निश्चय और विश्वास हो गया था कि जब तक स्थायी सुख और शान्ति के लिये प्रयत्न नहीं किया जायेगा तब तक सच्चा सुख नहीं मिल सकता। वे बारह वर्ष तक घोर तपस्या और चिंतन व मनन करते रहे। परिणामतः बयालीस वर्ष की अवस्था में उनको पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ। पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के उपरान्त वे संसार के प्राणियों को बतलाने लगे कि उनके दुखों का कारण क्या है, और उन कारणों को दूर कर सच्चा, निर्बाध व अनन्त सुख कैसे प्राप्त किया जा सकता है? इस प्रकार तीस वर्ष तक वे संसार को ज्ञान-दान करते रहे। बहत्तर वर्ष की आयु में उनको इस संसार से मुक्ति प्राप्त हुई।

सन् १९७४ की दीपावली को भगवान महावीर को निर्वाण प्राप्त किये हुए २५०० वर्ष हो जायेंगे। इस उपलक्ष में उनका २५००वां निर्वाण महोत्सव देश के कोने-कोने में विशाल स्तर पर मनाया जायेगा। हम सब का भी यह परम पुनीत कर्तव्य है कि हम भी इस निर्वाण महोत्सव को सफल बनाने में अपना अधिक-से-अधिक योगदान कर भगवान महावीर के चरण कमलों में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें।

# भगवान महावीर के मुख्य सिद्धान्त



## हमारे दुःखों के मूल कारण तथा उनको दूर करने के उपाय

भगवान महावीर ने देखा कि संसार का प्रत्येक जीव दुःखी है, कोई किसी एक कारण से, तो कोई किसी दूसरे कारण से। जब उनको पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया तब उन्होंने बतलाया कि संसार के जीवों के दुःखों का मूल कारण इन जीवों का अनादि काल से चला आ रहा उनका अपना अज्ञान ही है। अपनी इस अज्ञानता के कारण, प्रत्येक जीव विभिन्न जन्मों में उसको जो भी शरीर मिलता रहा है, उसी को अपना सब कुछ मानता रहा है। इसी अज्ञानता के कारण यह जीव इस शरीर के सुख को वास्तविक सुख और इस शरीर के दुःख को वास्तविक दुःख मानता रहा है। जो भी अन्य जीव उसको शारीरिक सुख प्राप्त कराने में सहायक होता है, यह जीव उसको ही अपने सुख का कारण मानकर उसको अपना मित्र–अपना हितैषी–मानता रहा है, और उससे राग–प्रीति–करता रहा है तथा जो भी अन्य जीव उसको शारीरिक सुख प्राप्त करने में बाधक होता है और उसको शारीरिक दुःख देता है, उसको यह जीव, अपने दुःख का कारण मानकर, अपना शत्रु मानता रहा है और उससे द्वेष—नफ़रत—करता रहा है। इस प्रकार यह जीव अपनी इस अज्ञानता और इन राग-द्वेष मूलक हिंसा की भावनाओं के कारण ही अनादि काल से बुरे कर्मों का संचय करता रहा है, जिनके फलस्वरूप यह जीव अनादि काल से ही दुःख भोगता रहा है।

किन्तु वास्तविकता यह है कि जिस शरीर को ७

मानकर और जिसके क्षणिक सुख के लिये यह जीव सब प्रकार के अच्छे, बुरे व हिंसा के कार्य कर रहा है, वह शरीर भी उसका अपना नहीं है। यह शरीर केवल एक जन्म का ही साथी होता है। अनादि काल से जन्म-मरण करते हुए इस जीव ने कितने शरीर धारण किये हैं, क्या कोई उनकी गिनती कर सकता है ? हाँ, इस जीव की आत्मा सदैव से वही एक ही है और अनन्त काल तक वही रहेगी। वस्तुतः तो हम आत्मा ही हैं। अतः हमें इस शरीर को सुख देने की ओर ध्यान न देकर अपनी आत्मा का कल्याण करने की ओर ही ध्यान देना चाहिए। जिस क्षण भी हम अपने को आत्मा और इस शरीर को पर मानकर तदनुसार आचरण करना प्रारम्भ कर देंगे, हमारे दुःख के कारण स्वयमेव ही दूर होते जायेंगे।

भगवान महावीर ने आगे बतलाया कि किसी भी जीव को सुख व दुःख देने वाले कोई अन्य जीव नहीं हैं, अपितु पूर्व में किये हुए उसके स्वयं के अच्छे व बुरे कर्म ही हैं। दूसरे जीव तो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं। जिस प्रकार कोई व्यक्ति हमें शस्त्र से घायल कर देता है तो हम उस शस्त्र को नहीं, अपितु उस शस्त्र के चलाने वाले व्यक्ति को ही अपराधी मानते हैं। ठीक इसी प्रकार किसी भी जीव को सुख व दुःख देने में वास्तविक कारण उसके अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए अच्छे व बुरे कर्म होते हैं; न कि वे जीव जिनके द्वारा ये दुःख व सुख मिलते हैं। इस तथ्य को हृदयंगम करके हमें अपने को सुख मिलने में निमित्त बनने वाले जीवों के प्रति राग और अपने को दुःख देने में निमित्त बनने वाले जीवों के प्रति द्वेष न करके, इन सुखों व दुःखों को अपने ही कर्मों का

फल समझकर, उनको तटस्थ व समताभाव से सहने करना चाहिए। इस प्रकार तटस्थ व समताभाव से सुख व दुःख सह लेने पर हमारे पुराने कर्म तो अपना फल देकर नष्ट हो ही जायेंगे, भविष्य के लिये भी हमारे कर्मों के संचय होने की सम्भावना बहुत कम रह जायेगी और इस प्रकार शनैः-शनैः हमारे दुःखों के कारणों का अभाव होता जायेगा। इस प्रकार की साधना करते रहने से तथा समताभाव से तप करते रहने से एक समय अवश्य ही ऐसा आयेगा जब हमारे दुःखों के कारणों—समस्त कर्मों—का सर्वथा अभाव हो जायेगा।

यहाँ पर यह तथ्य भी ध्यान में रखने योग्य है कि हमें जो भी सुख व दुःख मिलते रहते हैं, वे अधिकांश में स्वयमेव ही मिलते रहते हैं। ऐसा तो बहुत कम होता है कि कोई अन्य व्यक्ति हमें दुःख व सुख दे, तभी हम दुःखी व सुखी हों। जैसे कि हम किसी दुर्घटना में फँस जाते हैं, हम रोगग्रस्त हो जाते हैं, हमें व्यापार में हानि हो जाती है, हमारे किसी इष्ट मित्र व सम्बन्धी की मृत्यु हो जाती है, ऐसे दुःख हमें स्वयमेव ही मिलते रहते हैं। इन दुःखों के लिये हम किसी अन्य व्यक्ति को उत्तरदायी न मानकर इन्हें अपने कर्मों का ही फल मानते हैं। तो फिर कभी-कभी जो दुःख हमें किन्हीं अन्य व्यक्तियों के निमित्त से मिलते हैं, उनको भी हम अपने कर्मों का ही फल क्यों न मानें ?

### यह संसार अनादि व अनन्त है

भगवान महावीर ने यह भी बतलाया कि यह संसार तथा इसकी समस्त आत्माएं व पुद्‌गल द्रव्य अनादि व अनन्त हैं। (अनादि—अन+आदि—का अर्थ है जिसका

कभी आदि—प्रारम्भ—न हुआ हो अर्थात् जो सदैव से हो। अनन्त—अन+अन्त—का अर्थ है जिसका कभी अन्त—विनाश—न हो, अर्थात् जो सदैव तक रहे)। इस संसार की समस्त आत्माएं सदैव से हैं और वे सदैव तक रहेंगी। वे अपने-अपने कर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न शरीर ग्रहण करती रहती हैं और उन्हीं कर्मों के अनुसार सुख व दुःख भोगती रहती हैं। जब तक उनके कर्मों का क्षय नहीं हो जाता, वे कोई-न-कोई शरीर धारण करती ही रहेंगी। जब उनके कर्मों का अभाव हो जायेगा तब वे मोक्ष में चली जायेंगी। मोक्ष में भी प्रत्येक आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व बना रहेगा। इन आत्माओं के अतिरिक्त जो कुछ भी इस संसार में है वह सब पुद्गल (Matter) है। यह पुद्गल भी सदैव से है और सदैव तक रहेगा। हाँ, कुछ कारण मिलने पर इनका रूप परिवर्तन होता रहता है। जैसे जहाँ कभी समुद्र था वहां पहाड़ निकल आते हैं, जहाँ कभी पहाड़ थे वहाँ समुद्र बन जाते हैं। इसी प्रकार जो सोना कुछ समय पहले कड़े के रूप में था, सुनार उसका हार बना देता है। यहां भी कड़े का रूप परिवर्तन हो गया परन्तु सोना विद्यमान ही रहा।

इसी प्रकार हम जो वृक्षों को बढ़ता हुआ देखते हैं वह भी कोई नयी वस्तु अस्तित्व में नहीं आ रही। ये वृक्ष भी हवा, पानी, मिट्टी, धूप आदि से पोषक तत्त्व प्राप्त करके बढ़ते रहते हैं। इस प्रकार भगवान महावीर ने बतलाया कि इस संसार का एक भी परमाणु न तो कभी नया बना था और न एक भी परमाणु का कभी विनाश ही होगा। हां, उनका रूप परिवर्तन अवश्य होता रहता है।

**अहिंसा :** भगवान महावीर ने देखा कि संसार का

प्रत्येक प्राणी, चाहे वह मनुष्य हो या पशु-पक्षी, विशाल-काय हाथी हो या छोटा सा कीड़ा, सब ही सुख पूर्वक जीवित रहना चाहते हैं। कोई भी प्राणी यह नहीं चाहता कि उसे किसी प्रकार का कष्ट हो। वह जो भी कार्य करता है अन्ततः सुख पाने के लिये ही करता है। परन्तु वह यह नहीं देखता कि उसके सुख प्राप्त करने के प्रयत्नों के कारण दूसरे प्राणियों को कष्ट तो नहीं हो रहा है; जबकि उसके ऐसे प्रयत्नों से दूसरे प्राणियों को कभी प्रत्यक्ष में और कभी परोक्ष में कष्ट होता रहता है। उदाहरण के लिये, अपने स्वाद और मनोरंजन के लिए दूसरे जीवों की हत्या करना और अन्य प्रकार से कष्ट देना उनको प्रत्यक्ष में ही कष्ट पहुंचाना है। इसी प्रकार लालच के वश खाद्य पदार्थों में मिलावट करना और बढ़िया वस्तु के स्थान पर घटिया वस्तु देना, दूसरों को परोक्ष रूप से कष्ट पहुंचाना है, क्योंकि इस प्रकार के अनैतिक आचरण से कालान्तर में दूसरों को कष्ट उठाना पड़ता है। दूसरे प्राणियों को इस प्रकार से कष्ट देने के कारण वह व्यक्ति स्वयं खोटे कर्मों का संचय करता है और इन खोटे कर्मों के फलस्वरूप कालान्तर में उसको भी कष्ट उठाना पड़ता है। इस प्रकार संसार के प्राणियों द्वारा दूसरे प्राणियों को कष्ट पहुंचाने और फिर उसके फलस्वरूप स्वयं कष्ट पाने का चक्र अनादि काल से चला आ रहा है। यदि संसार का प्रत्येक प्राणी दूसरे प्राणियों को इस प्रकार प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से कष्ट देना छोड़ दे तो इस संसार में दुख का नाम निशान भी नहीं रहे। इसीलिए भगवान महावीर ने दूसरों को किसी भी प्रकार का कष्ट न देने अर्थात् अहिंसा का पालन करने का उपदेश दिया और बतलाया कि हिंसा ही सब दुखों की

जननी है और अहिंसा सब सुखों का स्रोत है। उन्होंने कहा कि वस्तुतः इस संसार में अहिंसा ही परम धर्म है। इसके अतिरिक्त जो भी यम नियम आदि बतलाये गये हैं वे सब अहिंसा को दृढ़ करने के लिये ही हैं।

अपरिग्रह : भगवान महावीर ने बतलाया कि अहिंसा का पालन करना तो धर्म है ही, परन्तु जो प्राणी अपने पूर्व उपार्जित पापों के फलस्वरूप कष्ट पा रहे हैं, उनके कष्टों को दूर करना और उनको कम करने के प्रयत्न करना भी धर्म है। दूसरों के कष्टों को दूर करने के लिये हमको कुछ त्याग करना पड़ता है, अपने समय का त्याग, अपने धन का त्याग व अपने सुख का त्याग। जैसे किसी रोगी व्यक्ति की सेवा करना, उसको अपने धन से दवा दिलाना, इसी प्रकार कोई व्यक्ति भूख से व्याकुल हो उसको भोजन खिलाना, कोई व्यक्ति किसी कारण से भयभीत हो रहा हो उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध करना, कोई अनपढ़ हो तो उसको पढ़ाने का प्रबन्ध करना, कोई किसी शोक से दुखी हो तो उसको सांत्वना देना, आदि। इन सब कार्यों के लिये हमें अपना समय और धन देना पड़ता है तथा अपना सुख छोड़ना पड़ता है। यह सब त्याग के अन्तर्गत आता है। दूसरे शब्दों में इसको दया करना व दान देना भी कहते हैं। इस दया, दान व त्याग की भावना को पुष्ट करने के लिये भगवान महावीर ने परिग्रह परिमाण व्रत का उपदेश दिया। उन्होंने कहा कि अपनी आवश्यकताओं को कम से कम करते जाओ। अपनी धन संग्रह की लालसा पर अंकुश रखो और उसको किसी सीमा में बांध दो; जैसे कि हम एक मकान से अधिक नहीं रखेंगे, अमुक संख्या से अधिक कपड़े व अन्य वस्तुएँ नहीं रखेंगे, अमुक राशि से अधिक

धन नहीं रखेंगे। इस प्रकार सीमा बांध लेने से हमारी लालसा कम होती जायेगी और हम एक सीमा तक ही लौकिक कार्य, व्यापार आदि करेंगे और अपना बचा हुआ समय व धन दूसरों का उपकार करने और अपनी आत्मा की उन्नति में लगा सकेंगे। यही नहीं, इसके फलस्वरूप, उपलब्ध वस्तुओं का बटवारा भी अधिक से अधिक व्यक्तियों में हो सकेगा। तात्पर्य यह है कि यदि भगवान महावीर के इस उपदेश का पालन किया जाये तो आज जो वर्ग-संघर्ष हो रहा है वह स्वयमेव ही दूर हो जायेगा।

इस विषय पर हम एक अन्य दृष्टिकोण से भी विचार कर सकते हैं। संसार में किसी भी व्यक्ति की तृष्णाओं और इच्छाओं की कोई सीमा नहीं है। हमारी एक इच्छा पूरी हो नहीं पाती कि अन्य अनेकों नई इच्छाएँ आकर खड़ी हो जाती हैं। यही दशा तृष्णाओं की भी है। यदि आज हमारे पास एक लाख रुपया है तो हम दस लाख पाने की तृष्णा करने लगते हैं, और जब दस लाख हो जाता है तो एक करोड़ पाने की तृष्णा हो जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी भी व्यक्ति की तृष्णाओं व इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है। अपनी तृष्णाओं व इच्छाओं की पूर्ति के लिये हम तरह-तरह के अन्याय व अत्याचार करते हैं और अनुचित साधनों का प्रयोग करते हैं। और ऐसा करते समय हम इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं करते कि हमारे इन कार्यों से अन्य व्यक्तियों तथा पशु-पक्षियों को कितना कष्ट हो रहा है। विडम्बना तो यह है कि यह सब अन्याय व अत्याचार करने के पश्चात् भी यह निश्चित् नहीं होता कि हमारी सभी तृष्णाएँ व इच्छाएँ पूरी हो ही जायेंगी। इन अन्यायों व अनुचित साधनों के फलस्वरूप व्यक्तियों में

वर्ग-संघर्ष का जन्म होता है। परिणाम यह होता है कि न तो हमको ही सुख शान्ति मिल पाती है न अन्य व्यक्तियों को ही। संसार के अधिकांश युद्ध इन्हीं तृष्णाओं की पूर्ति के लिए लड़े गये और उनके फलस्वरूप जन व धन की कितनी हानि हुई इसका लेखा-जोखा करना असंभव है। यदि हम अपनी तृष्णाओं व इच्छाओं पर अंकुश लगायें और संतोषपूर्वक जीवन-यापन करें तो इससे केवल हमको ही सुख व शान्ति नहीं मिलेगी अपितु अन्य व्यक्तियों को भी सुख व शान्ति मिलेगी। इसीलिये भगवान महावीर ने प्रत्येक व्यक्ति को अपनी तृष्णाओं व इच्छाओं पर अंकुश लगाने और अपनी आवश्यकताओं को कम करते हुए संतोषपूर्वक जीवन-यापन करने का उपदेश दिया था। इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम हाथ पर हाथ धर कर बैठ जायें अपितु इसका तात्पर्य यही है कि परिश्रम, ईमानदारी तथा अहिंसक व समुचित साधनों से हमको जो भी मिले हम उसमें संतोष रखें और यथाशक्ति अपने तन, मन व धन से दूसरों की भलाई करते रहें। आज जिस समाजवाद और अधिकतम सम्पत्ति सीमा नियम को लागू करने के लिये शासक अपने अधिकार व कानून का प्रयोग कर रहे हैं, भगवान महावीर ने प्रत्येक व्यक्ति से उसको स्वतः ही अपने ऊपर लागू करने का आग्रह किया था।

**संयम :** भगवान महावीर ने कहा था कि अहिंसा व परिग्रह-परिमाण व्रत के पालन के साथ-साथ हमको अपने मन, अपने कान, आंख, नाक, जिह्वा आदि इन्द्रियों को भी अपने वश में रखना चाहिये अर्थात् अपना जीवन संयमपूर्वक व्यतीत करना चाहिये। संयम का जीवन में बहुत बड़ा महत्व है। इन इन्द्रियों को अपने वश में रखने

के बजाये यदि हम इन इन्द्रियों की वासनाओं के दास बन गये तो हमारे अहिंसा व परिग्रह-परिमाण आदि व्रत सर्व व्यर्थ हो जायेंगे और हम चरित्रहीन हो जायेंगे। एक चरित्रहीन व्यक्ति उस नदी के समान होता है जो अपने किनारों को तोड़ कर बहने लगती है और सारे क्षेत्र के लिये तबाही व बरबादी का कारण बन जाती है। ऐसे ही चरित्रहीन व्यक्ति समाज के लिये बोझ बन जाते हैं। दूसरों के लिये दुःख का कारण बनने के साथ-साथ वे अपना स्वास्थ्य नष्ट कर लेते हैं और स्वयं भी जीवन पर्यन्त दुःखी ही रहते हैं। इसके विपरीत एक संयमी व्यक्ति स्वयं भी सुखी व स्वस्थ रहता है तथा समाज में भी आदर पाता है।

इसी प्रकार हमें कुछ तप करने का अभ्यास भी करते रहना चाहिये। तप करने का अर्थ केवल शरीर को कष्ट देना ही नहीं है अपितु शरीर को बुरी परिस्थितियों में भी अभ्यस्त रखना है। जिस प्रकार एक सैनिक शान्ति के दिनों में भी नियमित जीवन व्यतीत करता है और प्रति वर्ष कुछ समय के लिये युद्ध जैसी परिस्थितियों में भी रहता है, जिससे कि वास्तविक युद्ध के लिये वह सदैव तैयार रहे, इसी प्रकार तप करते रहने से भी व्यक्ति अपने शरीर को अपने वश में रख सकता है और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी समतापूर्वक जीवन व्यतीत करने का अभ्यस्त हो सकता है, जिससे कि कठिनाई के समय वह अपने लक्ष्य से विचलित न हो जाये। संयम पालने और तप करने से हमारे पूर्व में किये हुए पापों का नाश भी होता है।

**पुनर्जन्म :** भगवान महावीर ने देखा कि संसार में

प्रत्येक प्राणी दुखी है, कोई कम कोई अधिक। कोई किसी एक कारण से दुखी है तो दूसरा किसी अन्य कारण से। अधिकांश में ये दुख के कारण स्वयमेव ही आ खड़े होते हैं। यह आवश्यक नहीं कि कोई अन्य व्यक्ति किसी को दुखी करे तभी वह दुखी हो। अधिकांशतया यह देखा जाता है कि सुख पाने के अनेक प्रयत्न करने पर भी मनुष्य सुखी नहीं हो पाता; जबकि कभी-कभी बिना विशेष प्रयत्न किये भी उसको सुख प्राप्त हो जाता है। उन्होंने देखा कि संसार में अनेक विषमताएं और विडम्बनाएं हैं। जैसे कि एक व्यक्ति बिना परिश्रम किये तथा दूसरों पर अन्याय व अत्याचार करते हुए भी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है, जबकि एक अन्य व्यक्ति परिश्रम व ईमानदारी से कार्य करता है और दूसरों का उपकार करने में लगा रहता है; फिर भी वह दुखी रहता है। क्या यह सुख—अन्याय व अत्याचार का ही परिणाम है ? क्या अन्याय व अत्याचार करने वाले व्यक्ति को कभी दण्ड नहीं मिलेगा ? क्या परोपकार करने वाले व्यक्ति को अपने अच्छे कार्यों का कभी सुफल नहीं मिलेगा ? इसी प्रकार कुछ बालक जन्म से ही दुखी, दरिद्री, अपंग व रोगी होते हैं, जबकि कुछ अन्य बालक जन्म से ही स्वस्थ व सुखी रहते हैं। प्रश्न यह है कि पहले वाले बालकों को किस अपराध का दण्ड मिल रहा है और अन्य बालकों को किस भलाई का पुरस्कार मिल रहा है ? यह सब केवल घटनावश (By accident) ही तो नहीं हो रहा है। इन सब परिणामों का कुछ न कुछ कारण तो होना ही चाहिए। किन्तु जनसाधारण को उनमें कोई तर्क-सम्मत औचित्य दिखाई नहीं पड़ता। भगवान महावीर ने इस समस्या पर गहन चिन्तन व मनन किया। जब

उनको पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया तो उन्होंने संसार को बतलाया कि कोई भी प्राणी केवल वर्तमान में दिखने वाला स्थूल शरीर ही नहीं है, वास्तविक प्राणी तो उसकी आत्मा है। इस आत्मा का अस्तित्व अनादि काल से है और अनन्त काल तक रहेगा। जिस प्रकार हम पुराने वस्त्रों को उतार कर नये वस्त्र धारण कर लेते हैं उसी प्रकार यह आत्मा एक शरीर त्याग कर अपने कर्मों के अनुसार नये-नये शरीर धारण करती रहती है, और अपने कर्मों के अनुसार ही वह सुख व दुख भोगती रहती है। यह आवश्यक नहीं है कि इस जन्म में हम जो भी अच्छे व बुरे कार्य कर रहे हैं उनका फल हमको इसी जन्म में मिल जाये। वह फल हमको इसी जन्म में भी मिल सकता है और अगले जन्मों में भी मिल सकता है। इसी प्रकार पिछले जन्मों में हमने जो अच्छे व बुरे कार्य किये हैं उनका फल हमको संभवतः पिछले जन्मों में भी मिल चुका है, इस जन्म में भी मिल सकता है और अगले जन्मों में भी मिल सकता है। यह संसार-चक्र अनादि काल से इसी प्रकार चलता आया है और भविष्य में भी तब तक इसी प्रकार चलता रहेगा, जब तक हम अपने पुरुषार्थ से अपने समस्त कर्मों को नष्ट नहीं कर देते। यही पुनर्जन्म का सिद्धान्त है।

**मुक्ति का द्वार सब जीवों के लिए खुला है**

भगवान महावीर ने बतलाया कि जब तक इस जीव के साथ अच्छे व बुरे कर्मों का बन्धन लगा हुआ है, तब तक यह जीव इस संसार में जन्म मरण करता हुआ सुख व दुःख भोगता रहेगा। परन्तु जब यह जीव अपने सत्पुरुषार्थ अर्थात् अहिंसा, संयम, तप, त्याग, ध्यान, आदि के द्वारा इन कर्मों के बन्धन को छिन्न-भिन्न कर देगा, तभी

यह जीव मुक्ति पाने का अधिकारी हो जायेगा। अपने कर्मों को नष्ट करने में उसे किसी भी अन्य जीव की सहायता की अपेक्षा नहीं है। यह कार्य वह स्वयं, और केवल स्वयं ही, अपने सत्पुरुषार्थ के द्वारा कर सकता है। एक बार मुक्ति प्राप्त कर लेने पर यह आत्मा अनन्त काल तक मुक्ति में ही रहती है, और फिर लौटकर संसार में नहीं आती, क्योंकि इस जीव को संसार में जन्म मरण कराने व सुख दुःख देने के कारण जो कर्म होते हैं, उनका ही सर्वथा अभाव हो जाता है। मुक्ति में इस जीव के साथ किसी भी प्रकार का भौतिक शरीर नहीं रहता, और न उसको किसी प्रकार का भौतिक सुख प्राप्त करने की इच्छा ही रहती है। मुक्ति में यह आत्मा अनन्त काल तक एक अनुपम, अतीन्द्रिय, सच्चे सुख का उपभोग करती रहती है। भगवान महावीर ने बतलाया कि यह मुक्ति का द्वार किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों के लिए ही नहीं अपितु संसार के प्रत्येक प्राणी के लिए खुला हुआ है, केवल उसको सम्यक् पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है।

## तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियाँ

भगवान महावीर के जन्म के समय दो प्रकार की विचार धाराएँ प्रचलित थीं—एक श्रमण और दूसरी वैदिक। वैदिक विचारधारा वेदों के अनुसार क्रियाकाण्ड और यज्ञों के अनुष्ठान पर बल देती थी, जबकि श्रमण विचारधारा, व्यक्ति की पवित्रता, अहिंसा, संयम, तप और उसकी आत्मोन्नति पर अधिक बल देती थी। उस समय के क्षत्रिय अधिकतर श्रमण विचारधारा के पोषक थे और ब्राह्मण वैदिक विचारधारा के।

भगवान महावीर के जन्म से लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व जैनों के तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ हुए थे और भगवान महावीर के समय में भी उनके द्वारा प्रतिपादित जैन धर्म प्रचलित था।

भगवान महावीर के समय में श्रमण विचारधारा के पोषक कई प्रसिद्ध साधु थे, जिनमें निम्नलिखित पांच मुख्य थे; (१) पूर्ण कास्यप, (२) मस्करि गोशालि पुत्र (मंखलि गोशाल), (३) संजय वेलट्ठि पुत्त, (४) अजित केश कम्बलि, (५) प्रक्रुघ कात्यायन। यद्यपि उस समय कुछ व्यक्ति उन साधुओं के अनुयायी भी थे, पर जन साधारण पर अधिकांश में ब्राह्मणों का ही प्रभाव था। ब्राह्मण यज्ञ करते थे, जिनमें पशुओं की व कभी-कभी मनुष्यों तक की वलि दी जाती थी और उनका मांस खाया जाता था। मांसाहार का आम रिवाज था। स्त्रियों और विशेषकर शूद्रों की सामाजिक दशा वहुत खराब थी। उनको किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। उनको पग-पग पर अपमानित और पददलित किया जाता था। तात्पर्य यह है कि भगवान महावीर के समय में यहां पर हिंसा का जोर था और जनसाधारण धार्मिक अन्धविश्वास व बौद्धिक दासता से पूर्णतया ग्रस्त था।

महात्मा बुद्ध को भी, जो भगवान महावीर के समकालीन थे, उस समय फैली हुई हिंसा से वहुत दुख हुआ था। उन्होंने भी संसार के कष्टों से छुटकारा पाने का मार्ग खोजने के लिए गृह त्याग किया था। अपने साधना काल में उन्होंने कुछ समय के लिए जैन मुनि की दीक्षा भी ली थी। परन्तु जैन मुनि की कठिन चर्य्या का पालन न कर सकने के कारण उन्होंने दिगम्बर वेश त्याग कर वस्त्र

धारण कर लिए थे। अन्ततः उन्होंने बौद्धधर्म की स्थापना की जो मुख्य रूप से अहिंसा पर ही आधारित है, और जिसमें हिंसक क्रिया-काण्ड को कोई स्थान नहीं है।

## भगवान महावीर की कुछ विशिष्टताएं

वैसे तो भगवान महावीर का सारा जीवन ही विशिष्ट था, परन्तु यहाँ पर हम उनकी कुछ ही विशिष्टताओं की चर्चा करेंगे।

### सच्चे सुख का मार्ग सबके लिए

भगवान महावीर राजपुत्र थे। उनको तत्कालीन सभी सुख-सुविधाएँ उपलब्ध थीं। फिर उनके सम्मुख ऐसा कौन सा दुःख व समस्या थी, जिसके कारण उन्होंने राज-पाट और समस्त परिग्रह तथा बन्धु बान्धवों का मोह छोड़कर नग्न दिगम्बर वेश धारण किया ?

इसका उत्तर यही है कि भगवान महावीर दूरदर्शी थे। यह ठीक है कि उनको उस समय कोई भौतिक दुःख नहीं था, परन्तु इस बात का क्या विश्वास था कि उनको जीवन भर कोई भी दुःख नहीं सतायेगा। फिर वे स्वयं दुःखी नहीं थे तो क्या हुआ, वे अपने चारों ओर तो दुःखी प्राणियों को देख रहे थे। धर्म के नाम पर पशुओं के रक्त से होली खेली जा रही थी। पशुओं का आर्तनाद और दीन दुखियों का करुण क्रन्दन उनके हृदय को विदीर्ण किये डालता था। वह केवल अपने लिए ही नहीं अपितु संसार के प्रत्येक प्राणी के लिए सच्चे सुख का मार्ग खोजने निकले थे, और अन्ततः अपने चिन्तन, मनन, तप, त्याग व ध्यान आदि के द्वारा उन्होंने वह सच्चे सुख का मार्ग प्राप्त कर

भी लिया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान महावीर ने जो मार्ग दिखलाया था, वह केवल उनके अपने शाश्वत सुख के लिये ही नहीं था, अपितु वह तो संसार के प्रत्येक प्राणी को सच्चा, निर्बाध व अनन्त सुख प्राप्त कराने वाला था। उनकी धर्म सभा नें, केवल विशिष्ट व्यक्तियों या केवल मनुष्यों के लिए ही नहीं, अपितु समस्त पशु पक्षियों के लिए भी समुचित स्थान था। प्रत्येक जाति के पशु-पक्षी भी उनकी धर्म सभा में आकर शांति का अनुभव करते थे। ऐसी परिस्थितियों में उनके द्वारा दिखलाये हुए मार्ग में मनुष्यों में ऊँच और नीच का भेद उठने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। संसार के प्रत्येक प्राणी को अनन्त व सच्चा सुख प्राप्ति के समान अवसर प्रदान करने के कारण ही उनकी धर्म सभा समवशरण—जहाँ पर प्रत्येक प्राणी को किसी भी भेदभाव के विना समान रूप से शरण मिल सके—कहलाती थी।

उन्होंने मनुष्यों की उच्चता व नीचता, उनके जन्म व वेश से न मानकर उनके कर्मों से मानी थी। उनका कहना था कि सिर मुँडा लेने से कोई श्रमण नहीं वन जाता, केवल ओंकार का जप करने से कोई ब्राह्मण नहीं वन जाता, निर्जन वन में रहने मात्र से ही कोई मुनि नहीं वन जाता और केवल वल्कल वस्त्र पहनने से कोई तपस्वी नहीं हो जाता। इसके विपरीत समता पालने से श्रमण; ब्रह्मचर्य का पालन करने से ब्राह्मण; चिन्तन, मनन व ज्ञान से मुनि तथा तपस्या करने से तपस्वी होता है।

(उत्तराध्ययन, २५/३१-३२)

### एक आदर्श नेता

भगवान महावीर राजपुत्र थे। उनके नाना व अन्य

सम्बन्धी भी भिन्न भिन्न प्रदेशों के शासक थे। यदि वे चाहते तो अपने राज्याधिकारों का प्रयोग करके उन प्रदेशों में पशुबलि तथा अन्य प्रकार की हिंसा राजाज्ञा द्वारा बन्द करा सकते थे। परन्तु उन्होंने राजकीय अधिकारों का प्रयोग उचित नहीं समझा। क्योंकि वे जानते थे कि राजकीय नियम स्थायी नहीं होते। शासन में परिवर्तन होने के साथ-साथ वे भी बनते व बिगड़ते रहते हैं। इसलिए एक आदर्श नेता के समान पहले वे स्वयं सर्वोच्च और आदर्श अहिंसक बने और उसके पश्चात ही उनकी अहिंसक वृत्ति के प्रभाव से जन-साधारण का हृदय परिवर्तन हुआ। वास्तव में अपने अधिकारों का प्रयोग करके राजाज्ञा द्वारा हिंसा बन्द कराने के परिणाम क्या इतने प्रभावशाली व स्थायी हो सकते थे, जितने कि उनके द्वारा अपना समस्त जीवन ही अहिंसामय बना लेने से हुए? आज सभी विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि भारतवर्ष को अहिंसक बनाने का श्रेय यदि किसी को प्राप्त है तो वह भगवान महावीर को ही है।

**पूर्ण ज्ञानी होने तक मौन ही रहे**

उनकी एक विशिष्टता यह थी कि जब तक उनको पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हो गया, वे मौन रहकर ही चिन्तन-मनन व तपस्या में लीन रहे और अपने साधना-काल में उन्होंने संसार को कोई उपदेश नहीं दिया। उनकी यह मान्यता थी जब तक कोई व्यक्ति स्वयं ही पूर्ण ज्ञानी न हो, तब तक वह दूसरों को उपदेश कैसे दे सकता है? यद्यपि उस समय तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित जैनधर्म प्रचलित था और भगवान महावीर ने भी उसी धर्म का प्रचार किया, परन्तु फिर भी स्वयं सर्वज्ञ होने तक उन्होंने

मौन ही रक्खा और सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाने पर ही उन्होंने धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया। उनका उपदेश केवल मौखिक ही नहीं था, अपितु जिस मार्ग पर चलकर वे स्वयं अर्हन्त बने, उसी मार्ग पर चलने के लिये ही उन्होंने संसार के प्राणियों को उपदेश दिया। न तो उन्होंने कभी यह दावा किया कि वे ईश्वर के अवतार हैं अथवा ईश्वर के द्वारा संसार के कल्याण के लिए भेजे गये कोई विशिष्ट व्यक्ति हैं, न उन्होंने संसार को अपने पीछे चलने का नारा ही लगाया। उन्होंने तो यहाँ तक कहा, "जो कुछ मैंने कहा है, उसको केवल इसलिए ही सत्य न समझो कि वह मैंने कहा है। अपितु यदि आप उसको अपने स्वयं के चिन्तन, मनन व अनुभव के द्वारा सत्य पाओ, तभी सत्य समझो।" इस प्रकार उनके मार्ग में अन्धश्रद्धा व अन्ध-विश्वास को कोई स्थान नहीं था। उनका सम्पूर्ण जीवन एक खुली पुस्तक के समान था जिसका कोई भी अध्ययन कर सकता था और जहाँ पर कोई भी छिपाव व दुराव नहीं था। उनकी कथनी व करनी में कोई भी अन्तर न होने के कारण उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म शीघ्रता से देश व विदेशों में फैल गया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने धर्म का प्रचार करने के लिए कभी भी बल प्रयोग का सहारा नहीं लिया। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि धर्म प्रचार के लिये आज तक किसी भी जैन धर्मावि-लम्बी ने हिंसा का सहारा नहीं लिया।

### एक सर्वोच्च त्यागी

साधना के लिये गृह-त्याग करते समय जीवन के लिये अति आवश्यक वस्तुओं की तो बात ही क्या, भग-वान महावीर ने अपने शरीर पर सूत का एक तार तक

नहीं रक्खा और निर्वाण प्राप्त करने तक वे नग्न दिगम्बर अवस्था में ही रहे। उस समय वैदिक ऋषि नगरों से बाहर वनों में अवश्य रहते थे, परन्तु वे एक गृहस्थ के समान ही रहते थे। उनके रहने के लिये उनका अपना आश्रम होता था। उनके पास पत्नी, सन्तान, धन-धान्य, गाय अदि सभी प्रकार का परिग्रह होता था। ऐसे समय में भगवान महावीर ने संसार के सम्मुख एक अनुपम और सर्वोच्च त्यागी का आदर्श प्रस्तुत किया।

एक बात और भी है। वैदिक ऋषि अपने आश्रमों की सुरक्षा और अपने धार्मिक अनुष्ठानों को निर्विघ्न सम्पन्न करने के लिये स्थानीय राजाओं पर निर्भर रहते थे, क्योंकि वनों में रहने वाले असभ्य व्यक्ति उनके आश्रमों को नष्ट करते रहते थे और धार्मिक कार्यों में बाधा डालते रहते थे। इसके विपरीत भगवान महावीर ने गहन वनों में अकेले ही विहार किया। उनके साधना काल में अनेकों सभ्य व असभ्य व्यक्तियों ने उनको जान-बूझ कर शारीरिक व मानसिक कष्ट दिये, परन्तु वे इन कष्टों को निर्विकार रहकर समताभाव से सहते रहे। उन्होंने कभी भी इनका प्रतिकार नहीं किया। भगवान महावीर राजपुत्र थे और यदि वे चाहते तो अपनी सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्था करा सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा कभी नहीं किया और अकेले ही अपने मार्ग पर अविचल डटे रहे।

**दैन्य से छुटकारा : पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा**

भगवान महावीर के समय में जो वैदिक यज्ञ होते थे, उनमें इन्द्र, वरूण, अग्नि आदि देवताओं का आह्वान किया जाता था और उनसे आरोग्यता, धन-वैभव, स्त्री-पुत्र आदि प्रदान करने की प्रार्थना की जाती थी। वेदों

में इसी प्रकार के सैंकड़ों मन्त्र हैं, जिनमें देवताओं से अपने शत्रुओं के विनाश के लिए और स्वयं को आरोग्यता, सुख-समृद्धि, स्त्री-पुत्र आदि प्रदान करने के लिए प्रार्थनाएं की गयी हैं। इस प्रकार इन धार्मिक अनुष्ठानों के द्वारा अपने लिए सुख समृद्धि प्राप्त करने के लिए, एक दीन-हीन व्यक्ति के समान, देवताओं की कृपा की आकांक्षा की जाती थी। परन्तु भगवान महावीर ने जनसाधारण को इस दैन्य से छुटकारा दिलाया। उन्होंने संसार को बतलाया कि अपनी आत्मा के कल्याण के लिये किसी भी व्यक्ति को परमुखापेक्षी होने की आवश्यकता नहीं है। कोई भी व्यक्ति स्वयं अपने ही सम्यक् पुरुषार्थ के द्वारा अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता है और अन्ततः मुक्ति प्राप्त कर सकता है। भगवान महावीर ने बतलाया कि धन-वैभव, स्त्री-पुत्र आदि बाह्य पदार्थ सच्चे सुख के कारण नहीं हैं। सच्चा सुख किसी भी बाह्य साधन की अपेक्षा नहीं रखता। सच्चा सुख तो अपनी आत्मा में ही है और वह स्वयं अपने ही सम्यक् पुरुषार्थ, अहिंसा, संयम, तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

इसके साथ-साथ भगवान महावीर ने ब्राह्मण वर्ग के वर्चस्व (इजारेदारी) पर भी करारी चोट की। उस समय जितने भी वैदिक यज्ञ व अनुष्ठान आदि होते थे, वे केवल ब्राह्मण ही करते थे। बड़े से बड़ा राजा भी ब्राह्मणों की स्वीकृति और उनके सक्रिय सहयोग के बिना कोई भी धार्मिक कार्य नहीं कर सकता था। धर्म का सारा ढाँचा ही ब्राह्मणों के ऊपर आधारित था। परन्तु भगवान महावीर ने बतलाया कि किसी भी धार्मिक कार्य तथा अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिए किसी भी अन्य

व्यक्ति की आज्ञा व सहयोग की आवश्यकता नहीं है। धर्म किसी भी व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत विषय है। अतः प्रत्येक व्यक्ति अपना कल्याण स्वयं अपने ही सत् प्रयत्नों से कर सकता है। किसी भी अन्य व्यक्ति के द्वारा किये हुए अनुष्ठान से किसी का कल्याण नहीं हो सकता। जिस प्रकार किसी रोग को दूर करने के लिए रोगी को स्वयं ही औषधि सेवन करनी पड़ती है, किसी अन्य व्यक्ति के औषधि सेवन से रोगी का रोग दूर नहीं हो सकता ; ठीक इसी प्रकार अपनी आत्मा का कल्याण करने और सच्चा सुख प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही सम्यक् पुरुषार्थ करना पड़ेगा। इस प्रकार भगवान महावीर ने जन साधारण को दैन्य से और एक विशेष वर्ग के वर्चस्व से छुटकारा दिलाकर व्यक्तिगत पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा की।

**स्त्रियों के समानाधिकार को मान्यता**

भगवान महावीर ने, जहाँ तक धार्मिक विषयों का सम्बन्ध है, स्त्रियों को पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र व स्वावलम्बी बतलाया। उन्होंने कहा कि एक स्त्री को भी धर्म का पालन करने और अपनी आत्मा का कल्याण करने की उतनी ही स्वतन्त्रता है, जितनी कि एक पुरुष को। धर्म प्रत्येक व्यक्ति का, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष, व्यक्तिगत विषय है। एक स्त्री भी अपने पति अथवा अन्य किसी सम्बन्धी की अपेक्षा के बिना धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न कर सकती है। यही कारण था कि भगवान महावीर के संघ में साध्वियों और श्राविकाओं (गृहस्थ महिलाओं) की संख्या साधुओं और श्रावकों से कम नहीं थी। उनके संघ की साध्वियों की प्रमुख एक कुमारी कन्या चन्दनबाला ... जिसने अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिये

वैवाहिक वन्धन में वन्धने से इन्कार कर दिया था। इस प्रकार जब वैदिक ऋषि स्त्रियों को हर प्रकार से पुरुषों की मुखापेक्षी समझते थे, तब भगवान महावीर ने स्त्रियों की स्वतन्त्रता व उनके समान अधिकार की घोषणा की। यही कारण है कि आज भी भारत में हजारों जैन साध्वियाँ अपनी आत्मा का कल्याण करने के साथ-साथ मानव-समाज का भी कल्याण करती हुई सारे देश की पदयात्रा करती रहती हैं।

**सर्वोच्च समन्वयवादी**

भगवान महावीर सर्वोच्च समन्वयवादी थे। उन्होंने वतलाया था कि प्रत्येक पदार्थ में विभिन्न अपेक्षाओं से वहुत से गुण होते हैं। परन्तु अधिकांश व्यक्ति अपनी अज्ञानता के कारण किसी भी पदार्थ को विभिन्न अपेक्षाओं से न देखकर उसे केवल अपने एक विशेष दृष्टिकोण से ही देखते हैं और फिर उस एक दृष्टिकोण से जो कुछ जाना है उसका ही आग्रह करने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे उस पदार्थ का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में तो असफल रहते ही हैं, साथ-साथ एक-दूसरे से मतभेद व वैमनस्य भी पैदा कर लेते हैं।

इस सम्वन्ध में हम एक उदाहरण देते हैं। राजा रामचन्द्र जी में क्या-क्या गुण थे ? क्या वे केवल पुत्र ही थे ? क्या वे केवल पति ही थे ? क्या वे केवल भाई ही थे ? क्या वे केवल पिता ही थे ? आदि-आदि। यदि महाराज दशरथ यह कहते कि रामचन्द्र जी केवल पुत्र ही हैं और कुछ नहीं, तो क्या उनका यह कथन सर्वांग में सत्य माना जाता ? राम पुत्र अवश्य थे, परन्तु यह केवल सत्य का एक अंश मात्र ही है। महाराज दशरथ की अपेक्षा पुत्र

होने के साथ-साथ, सीता जी की दृष्टि से वे पति भी थे; भरत, लक्ष्मण व शत्रुघ्न की दृष्टि से वे भाई भी थे; लव व कुश की दृष्टि से वे पिता भी थे। रामचन्द्र जी के सम्वन्ध में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमें इन सब अपेक्षाओं को दृष्टि में रखना पड़ेगा। हम एक और उदाहरण लेते हैं। क्या हम पांच मीटर की रेखा को यह कह सकते हैं कि यह लम्बी है, या छोटी है अथवा यह वरावर है? इस पांच मीटर की रेखा को हम चार मीटर की रेखा की अपेक्षा से कहें तो हम इसको लम्बी कहेंगे। उसी रेखा को सात मीटर की रेखा की अपेक्षा से कहें तो हम उसी को छोटी कहेंगे। इसी प्रकार यदि उसको पांच मीटर की किसी अन्य रेखा की अपेक्षा से कहें तो उसे वरावर कहेंगे। इस प्रकार एक ही रेखा किसी अपेक्षा से लम्बी है, किसी अपेक्षा से छोटी है तथा किसी अपेक्षा से वरावर है। यदि हम इन तीनों की अपेक्षाओं को दृष्टि में न रखकर केवल यही कहेंगे कि यह रेखा लम्बी है, या छोटी है या वरावर है तो हमारा कथन सर्वांग में सत्य नहीं होगा। सम्पूर्ण सत्य को जानने के लिये हमें इन तीनों अपेक्षाओं का समन्वय करना होगा। भगवान महावीर ने सम्पूर्ण सत्य जानने और आपसी वैमनस्य तथा मतभेद दूर करने के लिये इसी प्रकार के समन्वय पर वल दिया था।

**उनके सिद्धान्त सर्वकालिक और सार्वभौमिक थे**

भगवान महावीर ने जो सिद्धान्त संसार को दिये, वे किसी विशिष्ट श्रेणी के व्यक्तियों, किसी विशेष देश तथा किसी विशेष काल के लिये ही नहीं थे, अपितु उनके सिद्धान्त सार्वभौमिक और देश तथा काल की सीमाओं से परे थे। उनके द्वारा प्रतिपादित अहिंसा, अपरिग्रह व

पुनर्जन्म आदि के सिद्धान्त आज भी उतने ही सत्य, उपयोगी व व्यवहारिक हैं, जितने कि वे उनके समय में थे।

एक बात हम यहाँ स्पष्ट कर दें कि हमने ऊपर जो तुलनात्मक विवेचन किया है, वह केवल वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिये किया है। हमारा अभिप्राय किसी की भी प्रतिष्ठा को कम आंकने का नहीं है।

## क्या भगवान महावीर सर्वज्ञ थे ?

कुछ व्यक्ति भगवान महावीर के सर्वज्ञ होने पर शंका करते हैं। परन्तु उनकी यह शंका निर्मूल है। यदि वे पूर्वाग्रह छोड़कर खुले मस्तिष्क से गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे तो उनकी इस शंका का समाधान हो जायेगा।

संसार की जनसंख्या कई अरब है। इन समस्त व्यक्तियों को एक-सा ज्ञान नहीं होता, किसी को कम होता है किसी को अधिक। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो थोड़ा-सा अध्ययन करके ही पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, जबकि कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो पर्याप्त परिश्रम करने पर भी समुचित ज्ञान का उपार्जन नहीं कर पाते। कुछ बालक जन्म से ही कुशाग्र बुद्धि के होते हैं, जबकि कुछ बालक जन्म से ही मन्द बुद्धि होते हैं। एक कक्षा में सभी बालक एक साथ और एक समान ही शिक्षा पाते हैं, फिर भी कुछ बालक परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं और कुछ असफल रह जाते हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि संसार में समस्त व्यक्तियों को एक समान ज्ञान नहीं होता, कुछ को कम होता है और कुछ को अधिक होता है। एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। ज्ञान का आधार यह भौतिक शरीर नहीं होता। यदि ज्ञान भौतिक शरीर के आधार

और अनुपात से होता तो मोटे-ताजे व्यक्ति में ज्ञान अधिक होता और दुबले-पतले व्यक्ति में कम होता। परन्तु यह बात जनसाधारण के अनुभव के विपरीत है। कुछ व्यक्ति बहुत मोटे ताजे व पहलवान होते हैं, परन्तु वे बहुत ही मन्द बुद्धि होते हैं; जबकि कुछ व्यक्ति दुबले-पतले व निर्बल होते हैं, परन्तु वे बहुत ही कुशाग्र बुद्धि होते हैं। इस प्रकार जब हम भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में ज्ञान की न्यूनता व अधिकता देखते हैं तो यह असम्भव नहीं दीखता कि किसी व्यक्ति में ज्ञान की सम्पूर्णता भी हो। इसलिए हम कह सकते हैं कि भगवान महावीर का सर्वज्ञ होना असम्भव नहीं है।

वास्तव में संसार के प्रत्येक जीव में सर्वज्ञ होने की शक्ति है, परन्तु उसकी इस शक्ति पर कर्मों का आवरण पड़ा हुआ है। किसी प्राणी की शक्ति पर यह आवरण अधिक गाढ़ा है और किसी पर कम गाढा। इसी कारण से प्रत्येक व्यक्ति के ज्ञान में भिन्नता होती है। जैसे-जैसे यह कर्मों का आवरण हल्का होता जाता है उस व्यक्ति की ज्ञान शक्ति अधिक विकसित दिखाई देती है। जिस व्यक्ति की शक्ति पर से यह कर्मों का आवरण बिल्कुल हट जाता है वही सम्पूर्ण ज्ञानी हो जाता है। व्यक्ति के ज्ञान की तुलना हम सूर्य के प्रकाश से और कर्मों की तुलना बादलों से कर सकते हैं। सूर्य का प्रकाश तो सदैव ही सम्पूर्ण तथा एक-सा रहता है, परन्तु हमारे सामने आकाश में बादल आ जाने के कारण ही हमको वह प्रकाश पूरा नहीं मिल पाता। जैसे-जैसे बादलों का आवरण हल्का होता जाता है, सूर्य का प्रकाश तीव्र होता जाता है। जब बादल बिल्कुल हट जाते हैं तब हम सूर्य का पूर्ण प्रकाश पा लेते हैं। सूर्य के प्रकाश में जो

न्यूनता व अधिकता होती है वह बादलों के कारण से ही होती है। बिल्कुल यही बात किसी भी व्यक्ति के ज्ञान के सम्बन्ध में भी है। भगवान महावीर ने अपने तप, त्याग व ध्यान आदि के द्वारा ज्ञान को ढकने वाले कर्म रूपी आवरण को बिल्कुल नष्ट कर दिया था, फलस्वरूप वे सर्वज्ञ हो गये थे।

संसार के जीवों के ज्ञान की तुलना हम तलवार की धार से भी कर सकते हैं। तलवार की धार सदैव ही तलवार में विद्यमान होती है, परन्तु जब तक तलवार को सान पर नहीं चढ़ाया जाता तब तक वह प्रकट नहीं हो पाती। जब उस तलवार को सान पर चढ़ाया जाता है तो वह धार तीव्र हो जाती है और प्रकट हो जाती है। इसी प्रकार प्रत्येक जीव में स्वभाव से ही पूर्ण ज्ञान विद्यमान है, परन्तु जब तक वह अपने सम्यक्-प्रयत्नों से उस ज्ञान को ढकने वाले कर्मों को नष्ट नहीं कर देता तब तक वह ज्ञान पूर्ण रूप से प्रकट नहीं हो पाता।

भगवान महावीर के सर्वज्ञ होने का एक और प्रमाण यह है कि भगवान महावीर ने जो सिद्धान्त और तथ्य प्रतिपादित किये थे वे अब विज्ञान द्वारा भी स्वीकृत किये जा रहे हैं। उदाहरणस्वरूप हम यहाँ पर कुछ तथ्य दे रहे हैं :

(१) भगवान महावीर ने बतलाया था कि पुद्गल (Matter) अनादि और अकृत्रिम है, न तो इसको किसी ने बनाया है; और न इसको कोई नष्ट ही कर सकता है; हां, केवल उसका रूप ही बदला जा सकता है। जैसे मिट्टी, पानी, वायु व प्रकाश आदि की सहायता से पेड़ बढ़ते हैं। उनको काटकर उनकी लकड़ी से लकड़ी का सामान बनाया

जाता है। जलाने से वह लकड़ी धुएं, कोयला, राख, गर्मी आदि में परिवर्तित हो जाती है परन्तु उसके परमाणु किसी न किसी रूप में सदैव ही विद्यमान रहते हैं। आज यह सिद्धान्त विज्ञान को भी मान्य है।

(२) भगवान महावीर ने वतलाया था कि यह संसार अनादि व अनन्त है। न इसकी किसी समय उत्पत्ति हुई और न इसका कभी विनाश होगा। आज वहुत से वैज्ञानिक इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं। वस्तुतः वैज्ञानिक अभी तक निश्चित रूप से यह नहीं जानते कि संसार की उत्पत्ति कब और कैसे हुई। जैसे-जैसे वैज्ञानिक अन्तरिक्ष में नई-नई खोजें कर रहे हैं और इनके फलस्वरूप नये-नये तथ्य प्रकाश में आ रहे हैं, वैज्ञानिक इस संसार की उत्पत्ति और इसकी आयु के सम्वन्ध में अपनी पुरानी धारणाओं को छोड़ते जा रहे हैं।

(३) भगवान महावीर ने कहा था इस संसार में अनन्तानन्त जीव भरे हुए हैं। आज विज्ञान भी यह मानता है।

(४) भगवान महावीर ने वतलाया था कि वनस्पति में भी जीवन और चेतना होती है। आज विज्ञान भी यह तथ्य स्वीकार करता है।

(५) भगवान महावीर ने आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म का सिद्धान्त संसार को दिया था। यद्यपि विज्ञान ने इस तथ्य को शत प्रतिशत मान्यता तो नहीं दी है परन्तु उसने इस सिद्धान्त का खंडन भी नहीं किया है। पश्चिमी देशों के वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक इस सम्वन्ध में अनुसंधान कर रहे हैं, और वहां पर इस सम्वन्ध में वहुत सा साहित्य भी प्रकाशित हो चुका है और हो रहा है। आज

वहुत से उच्च कोटि के वैज्ञानिक आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को निःसंकोच स्वीकार करने लगे हैं।*

अन्त में इस सम्बन्ध में हम बौद्ध ग्रन्थों से कुछ उद्धरण देते हैं।

(मज्झिम निकाय, देवदह सुत्तन्तः ३-१-१)

एक समय महात्मा बुद्ध शाक्यों के देवदह निगम में विहार करते थे। उस समय उन्होंने भिक्षुओं को आमंत्रित किया और उनसे निगंठ नातपुत्त (भगवान महावीर) के सिद्धान्त पर चर्चा की। महात्मा बुद्ध ने कहा, "मेरे एक प्रश्न के उत्तर में निगंठों (भगवान महावीर के अनुयायी मुनि) ने मुझसे कहा, 'आवुस ! निगंठ नातपुत्त सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं, अखिल ज्ञान दर्शन को जानते हैं। चलते, खड़े रहते, सोते, जागते सर्वदा उन्हें ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है। वे ऐसा कहते हैं, 'आवुसों निगंठों ! जो तुम्हारे पूर्वकृत कर्म हैं, उन्हें इस कड़वी दुष्कर तपस्या से नष्ट करो। इस समय काय, वचन व मन से तुम संवृत्त हो, यह तुम्हारे भविष्य के पाप का अकारक है। इस प्रकार प्राचीन कर्मों की तपस्या से समाप्ति होने पर व नये कर्मों के अनागमन से भविष्य में तुम अनास्रव हो जाओगे। भविष्य में अनास्रव होने से क्रमशः कर्म-क्षय, दुखक्षय, वेदनाक्षय और सभी दुख निर्जीर्ण हो जायेंगे।" इतना वर्णन करके महात्मा बुद्ध भिक्षुओं से कहते हैं "यह सिद्धान्त हमें रुचिकर लगता है। इससे हम संतुष्ट हैं।"

* टिप्पण : इस विषय पर हमारे द्वारा प्रकाशित "सच्चे सुख का मार्ग" नाम की पुस्तक का अवलोकन करें जो हमसे निःशुल्क प्राप्त कर सकते हैं।—प्रकाशक

(यहां पर महात्मा बुद्ध ने भगवान महावीर के सर्वज्ञ होने का प्रतिवाद नहीं किया है—लेखक)

(मज्झिम निकाय, चूल दुक्खक्खन्ध सुत्तन्त, १-२-४)

एक समय महात्मा बुद्ध शाक्य देश में कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में विहार करते थे। महानाम शाक्य महात्मा बुद्ध के पास आया और अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। महात्मा बुद्ध ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा—"......महानाम! एक बार मैं राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर विहार कर रहा था। उस समय बहुत सारे निगंठ (जैन साधु) ऋषिगिरि की कालशिला पर खड़े रहने का व्रत ले, आसन छोड़, उपक्रम करते थे। वे दुःखद, कटु व तीव्र वेदना झेल रहे थे। मैं सन्ध्याकालीन ध्यान समाप्त कर, एक दिन उनके पास गया। मैंने उनसे कहा "आवुसो! निगंठो, तुम खड़े क्यों हो? आसन छोड़कर दुःखद, कटु, व तीव्र वेदना क्यों झेल रहे हो?" निगंठों ने मुझे तत्काल उत्तर दिया—'आवुस! निगंठ नातपुत्त (भगवान महावीर) सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं। वे अपरिशेष ज्ञान दर्शन को जानते हैं। चलते, खड़े रहते, सोते, जागते, सर्वदा उन्हें ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है। वे हमें प्रेरणा देते हैं: 'निगंठों! पूर्वकृत कर्मों को इस कड़वी दुष्कर क्रिया (तपस्या) से समाप्त करो। वर्तमान में तुम काय, वचन, व मन से संवृत हो; अतः यह अनुष्ठान तुम्हारे भावी पाप कर्मों का अकारक है। इस प्रकार पूर्वकृत कर्मों का तपस्या से अन्त हो जाने पर और नवीन कर्मों के अनागमन से तुम्हारा चित्त भविष्य में अनास्रव होगा; आस्रव न होने से कर्म-क्षय होगा, कर्म-क्षय से दुःखक्षय, दुःखक्षय से वेदनाक्षय और वेदनाक्षय से सभी दुख नष्ट हो जायेंगे'।" ऐसा कहकर महात्मा बुद्ध

कहते हैं, "हमें यह विचार रुचिकर प्रतीत होता है; अतः हम इस क्रिया से सन्तुष्ट हैं।"

(यहां पर भी महात्मा बुद्ध ने भगवान महावीर की सर्वज्ञता का प्रतिवाद नहीं किया—लेखक)

बौद्ध ग्रंथ "दीर्घ निकाय" के प्रथम भाग में लिखा है– "निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र (भगवान महावीर) संघ के नेता हैं, गणाचार्य हैं, दर्शन विशेष के प्रणेता हैं, विशेष विख्यात हैं, तीर्थङ्कर हैं, बहुत मनुष्यों द्वारा पूज्य हैं, अनुभवशील हैं। बहुत समय से साधुचर्या करते हैं और अधिक वय वाले हैं।"

"मज्झिम निकाय" भाग १ में महात्मा बुद्ध कहते हैं कि "नाथपुत्र (भगवान महावीर) सब कुछ जानते हैं, समस्त पदार्थों को देखते हैं, उनका ज्ञान असीम है।"

"अंगुत्तर निकाय" में कथन है कि "निगंठ नातपुत्त (भगवान महावीर) सर्वदृष्टा थे, उनका ज्ञान अनन्त था और वे प्रत्येक क्षण पूर्ण सजग व सर्वज्ञ रूप में ही स्थित रहते थे।"

"संयुक्त निकाय" में उल्लेख है कि "निगंठ नातपुत्त (भगवान महावीर) यह बता सकते थे कि उनके शिष्य मृत्यु के उपरान्त कहाँ जन्म लेंगे? विशेष मृत व्यक्तियों के सम्बन्ध में जिज्ञासा करने पर उन्होंने बता दिया कि अमुक व्यक्ति ने अमुक स्थान में, अमुक रूप में नया जन्म धारण किया है।"

बौद्ध विद्वान धर्म कीर्ति ने जैन तीर्थङ्करों की सर्वज्ञता को स्वीकार करते हुए "न्याय बिन्दु" नामक ग्रन्थ के अध्याय ३ में लिखा है—

"जो सर्वज्ञ या आप्त हुआ है, उसी ने ज्ञान आदि का उपदेश दिया है। जैसे ऋषभ, वर्द्धमान (महावीर) आदि।"

ऊपर लिखित तथ्यों पर यदि हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो हम इसी निर्णय पर पहुंचेंगे कि भगवान् महावीर का सर्वज्ञ होना असम्भव नहीं है।

## क्या भगवान महावीर पलायनवादी थे ?

कुछ तथाकथित आधुनिक विचारों के व्यक्ति भगवान महावीर को पलायनवादी कहते हैं। परन्तु यह उनका भ्रम है और संकुचित मनोवृत्ति का परिचायक है। भगवान महावीर को पलायनवादी वतलाते समय उनकी दृष्टि में आजकल के वे साधु होते हैं, जिनमें से अधिकांश ने अपने उत्तरदायित्वों से भागकर साधु का भेष धारण कर लिया है। परन्तु जव हम भगवान महावीर के जीवन पर दृष्टि डालते हैं तो हमको पता चलता है कि भगवान महावीर को न तो कोई कष्ट ही था और न उनके ऊपर ऐसा कोई उत्तरदायित्व ही था, जिससे घवराकर उन्होंने घर छोड़ दिया हो। उनके जीवन में भी ऐसा कोई अवसर नहीं आया जव वे अपने किसी उद्देश्य में असफल रह गये हों; जिससे निराश होकर उन्होंने गृह त्याग किया हो। इसके विपरीत भगवान महावीर राजपुत्र थे; उनके माता पिता भी जीवित थे; तत्कालीन ऐसी कौन सी सुख व सुविधा थी, जो उनको प्राप्त न थी अथवा उनके इंगित पर उनको उपलव्ध न हो सकती थी ? घर छोड़कर जाने के वाद भी भगवान महावीर ने अपना जीवन स्वच्छन्दता से व्यतीत नहीं किया और न ही वन के फल-फूल खाकर अपनी क्षुधा मिटाई, अपितु उनको जव कभी भी भोजन की आवश्यकता होती थी वे मनुष्यों की वस्ती में आकर शुद्ध अन्न व जल ग्रहण करते थे। जव उन्होंने सम्पूर्णज्ञान (केवल ज्ञान)

प्राप्त कर लिया तब तो वे उपदेश देने के लिए नगरों व देहातों में ही विहार करते थे।

हां! भगवान महावीर सांसारिक दुःखों को देख कर व्याकुल अवश्य थे। वे जानते थे कि यह संसार दुःखों की खान है। इन्हीं दुःखों से व्याकुल होकर वे उन दुःखों के कारण, उन दुःखों को दूर करने के उपाय और शाश्वत सुख प्राप्त करने का मार्ग ढूंढ़ने निकले थे। वे उत्तर-दायित्वों से भागे नहीं थे किन्तु उन्होंने तो एक महान उत्तरदायित्व को वहन किया था और फिर अपने सम्यक् पुरुषार्थ से उस उत्तरदायित्व को पूरा करने में वे सफल भी हुए थे। उन्होंने सच्चे, निर्वाध और अनन्त सुख का मार्ग प्राप्त कर लिया था। उन्होंने स्वयं उस मार्ग पर चलकर अनन्त सुख प्राप्त किया और संसार को भी वह मार्ग दिखला गये। पलायन करने वाला व्यक्ति आराम और आलस्य का जीवन विताना पसन्द करता है, परन्तु भगवान महावीर ने अपने महान उद्देश्य की सिद्धि के लिये वारह वर्ष तक कठोर तपस्या की थी।

एक वात और भी है। भगवान महावीर सांसारिक दुःखों से भयभीत अवश्य थे परन्तु वे अत्यन्त निर्भय थे। यही कारण है कि उन्होंने न तो कोई शस्त्र धारण किया और न कभी अपने साथ कोई रक्षक ही रक्खा। इसके विपरीत वे तो अत्यन्त अपरिग्रही (दिगम्बर) होकर निर्जन और घनघोर वनों में अपनी साधना में लीन रहते थे। उन्होंने तो सर्वोच्च त्याग का आदर्श प्रस्तुत किया था। अतएव इन सव वास्तविकताओं को दृष्टि में रखते हुए भगवान महावीर के ऊपर पलायनवादी होने का आक्षेप करना संकुचित दृष्टि का परिचायक ही समझा जायेगा।

# जैन धर्म की प्राचीनता

जैन धर्म के सम्बन्ध में कुछ व्यक्तियों के मन में यह भ्रम बैठा हुआ है कि जैन धर्म अपेक्षाकृत एक नवीन धर्म है और भगवान महावीर इसके संस्थापक थे। परन्तु यह बात तथ्यों के विपरीत है। यदि ये महानुभाव निम्नलिखित प्रमाणों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे तो उनको अपनी भूल का ज्ञान हो जायेगा और वे वास्तविकता को जान जायेंगे।

तथ्य यह है कि इस युग में तीर्थंकर ऋषभनाथ जैन धर्म के संस्थापक थे, जिनका समय अब से करोड़ों वर्ष पूर्व था। उनके पश्चात् शत-सहस्रों वर्षों के बीच में तेईस तीर्थंकर और हुए, जिन्होंने अपने-अपने समय में जैन धर्म का प्रचार किया। इन्हीं तीर्थंकरों में भगवान महावीर अन्तिम अर्थात् चौबीसवें तीर्थंकर थे। भगवान महावीर ने कोई नया धर्म नहीं चलाया, अपितु उसी जैन धर्म का पुनरोद्धार किया था, जो भगवान ऋषभनाथ के समय से चला आ रहा था। आज सभी इतिहासकार तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ को एक ऐतिहासिक महापुरुष मानते हैं और वे एक मत से यह भी स्वीकार करते हैं कि भ० महावीर के जन्म से पहले भी भारतवर्ष में जैन धर्म प्रचलित था। इस तथ्य के पक्ष में सबसे प्रबल प्रमाण ग्रंथ 'मज्झिम निकाय महासीहनाद सुत्त १२' से मिलता

है। जब महात्मा बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त करने के लिए घर त्यागा था तब वह थोड़े समय के लिए जैन मुनि की अवस्था में भी रहे थे। परन्तु जैन मुनि की कठिन चर्य्या पालन न कर सकने के कारण उन्होंने कुछ समय पश्चात् वस्त्र धारण कर लिये थे। इस तथ्य का उल्लेख उन्होंने स्वयं बौद्धग्रंथ 'मज्झिम निकाय महा सीहनाद सुत्त १२' में किया है :—

"मैं वस्त्ररहित रहा, मैंने आहार अपने हाथों से किया। न लाया हुआ भोजन लिया, न अपने उद्देश्य से बनाया हुआ लिया, न निमन्त्रण से जाकर भोजन किया, न वर्तन से खाया, न थाली में खाया, न घर की ड्योढ़ी में (within threshold) खाया, न खिड़की से लिया, न मूसल के कूटने के स्थान से लिया, न गर्भिणी स्त्री से लिया, न बच्चों को दूध पिलाने वाली से लिया, न भोग करने वाली से लिया, न मलिन स्थान से लिया, न वहां से लिया जहां कुत्ता पास खड़ा था, न वहां से लिया जहां मक्खियां भिन-भिना रही थीं, न मछली, न मांस, न सड़ा मांड खाया, न तुस का मैला पानी पिया। मैंने एक घर से भोजन लिया सो भी एक ग्रास लिया, या मैंने दो घर से भोजन लिया दो ग्रास लिये। इस तरह मैंने सात घरों से लिया सो भी सात ग्रास, एक घर से एक ग्रास लिया। मैंने कभी दिन में एक बार भोजन किया, कभी पन्द्रह दिन भोजन नहीं किया। मैंने मस्तक, दाढ़ी व मूंछों के केश लोंच किये। उस केश लोंच की क्रिया को चालू रक्खा। मैं एक बूंद पानी पर भी दयालु रहता था। क्षुद्र जीव की हिंसा भी मेरे द्वारा न हो, ऐसा मैं सावधान था।"

"इस तरह कभी गर्मी, कभी ठंड को सहता हुआ भयानक वन में नग्न रहता था। मैं आग से तापता नहीं

था। मुनि अवस्था में ध्यान में लीन रहता था।"

यह सर्वविदित है कि उपरोक्त सारी क्रियायें जैन साधु की हैं। इसलिये इस तथ्य में किसी प्रकार की शंका नहीं है कि भगवान महावीर के जन्म के समय यहां जैन धर्म प्रचलित था। परन्तु वह शिथिल अवस्था में था। भगवान महावीर ने उसमें नये सिरे से प्राण फूंके।

जैन धर्म की प्राचीनता का प्रमाण हमें वेदों और पुराणों से भी मिलता है। वेद संसार के सबसे प्राचीन ग्रंथ माने जाते हैं। इन वेदों में ही कई स्थानों पर जैन तीर्थंकरों—यथा वृषभनाथ, सुपार्श्वनाथ और नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) के नाम आये हैं और उनका उल्लेख करके उनको नमस्कार किया गया है। इन तीर्थंकरों को 'जिन' तथा 'अर्हन्त' के नाम से भी सम्बोधित किया गया है। विद्वान पाठकों के अवलोकन के लिए हम यहां पर कुछ वेद मन्त्रों का हिन्दी अनुवाद दे रहे हैं।

"जिसमें बड़े-बड़े घोड़े जुते हुए हैं ऐसे रथ में बैठे हुए आकाश पथ पर चलने वाले सूर्य के समान विद्यारूपी रथ में बैठे हुए अरिष्टनेमि का हम आह्वान करते हैं।"

—(ऋग्वेद अ० २ अ० ४ व २४)

"हे अरिष्टनेमि मेरी रक्षा करो..."

—(यजुर्वेद अ० २६)

"अतिथि, मासोपवासी, नग्न मुद्राधारक भगवान् महावीर की उपासना करो, जिससे तीन प्रकार की अज्ञान अन्धकार रूपी रात्रि पैदा न हो।"

—(यजुर्वेद, अध्याय १६, मन्त्र १४)

"तू अखण्ड पृथ्वी-मण्डल का सार त्वचा स्वरूप है, पृथ्वीतल का भूषण है, दिव्य ज्ञान द्वारा आकाश को

नापता है। ऐसे हे वृषभनाथ सम्राट ! इस संसार में जग-रक्षक व्रतों का प्रचार करो।" —(ऋग्वेद ३ अ० ३)

"भो यजमान लोगों! इस यज्ञ में देवों के स्वामी, सुख-सन्तानवर्द्धक, दुःखनाशक, दिव्य आज्ञाशाली, अपार ज्ञान-वलदाता वृषभनाथ भगवान् का आह्वान करो।"

—(ऋग्वेद ३६/ ४-६-८-६-२-२०)

"हे वृषभनाथ भगवन् ! उदर तृप्ति के लिए सोमरस के पिपासु मेरे उदर में मधुधारा सिंचन करो। आप अपने प्रजारूप पुत्रों को विषम संसार से तारने के लिए गाड़ी के समान हो।" —(ऋग्वेद ३८/ अ० ७-३-३-११)

"भो वृषभ देव आप उत्तम पूजक को लक्ष्मी देते हो। इस कारण मैं आपको नमस्कार करता हूं और इस यज्ञ में पूजता हूं।" —४-१२२-५-२-२६

"जो मनुष्याकार अनन्त दान देने वाले और सर्वज्ञ अर्हन्त हैं वे अपनी पूजा करने वालों की देवों से पूजा कराते हैं।" —अ० ४ अ० ३ वर्ग ६

"भो अर्हन्तदेव ! तुम धर्म रूपी वाणों को, सदुपदेश रूपी धनुष को, अनन्तज्ञानादि रूपी आभूषणों को धारण करने वाले हो। भो अर्हन् ! आप जगत प्रकाशक केवल-ज्ञान को प्राप्त हो गए हो, संसार के जीवों के रक्षक हो, काम क्रोधादि शत्रु समूह के लिए भयंकर हो तथा आपके समान कोई अन्य वलवान नहीं है।"

—(ऋग्वेद २-३३-१०)

"भाव यज्ञ (आत्मस्वरूप) को प्रकट करने वाले, इस संसार के सब जीवों को सब प्रकार से यथार्थ रूप से कह-कर जो सर्वज्ञ नेमिनाथ स्वामी प्रकट करते हैं, जिनके उप-देश से जीवों की आत्मा पुष्ट होती है, उन नेमिनाथ तीर्थंकर

के लिये आहुति समर्पण है।"

—(यजुर्वेद अ० ५, मंत्र २५)

वेदों में इसी प्रकार के और भी मन्त्र हैं।

अव हम विभिन्न पुराणों में से कुछ श्लोकों का हिन्दी अनुवाद दे रहे हैं।

"कैलाश पर्वत पर भगवान् आदिनाथ (भगवान् ऋषभनाथ) ने युग के आदि में मुक्ति प्राप्त की तथा रैवत पर्वत (गिरनार) पर जिनेन्द्र नेमिनाथ ने मुक्ति प्राप्त की। इसी कारण ये दोनों पर्वत ऋषियों के आश्रम वने और इसी कारण ये मुक्ति मार्ग के कारण माने गये हैं।"

—(महाभारत)

"रामचन्द्र जी कहते हैं कि 'मैं न तो राम हूं, न मुझे कोई इच्छा है, न मेरा मन विषय भोगों में लगता है। मैं तो जिन (जिनेन्द्र भगवान) के समान अपनी आत्मा में ही शान्ति प्राप्त करना चाहता हूं। ॥८॥"

—(योग वशिष्ट, वैराग्य प्रकरण, सर्ग १५)

"अग्नीन्ध्र के पुत्र नाभि से ऋषभ नामक पुत्र हुआ। ऋषभ से भरत का जन्म हुआ, जो कि अपने सौ भाइयों से वड़ा था। ऋषभदेव ने अपने वड़े पुत्र भरत का राज्याभिषेक करके स्वयं प्रव्रज्या (साधुदीक्षा) ग्रहण की और तप करने लगे। भगवान ऋषभदेव ने भरत को हिमालय पर्वत से दक्षिण का राज्य दिया था, इस कारण उस महात्मा भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।"

—(मार्कण्डेय पुराण, अ० ५०—३९, ४०, ४१)

"भगवान ऋषभदेव से वीर भरत का जन्म हुआ, जो अन्य सौ पुत्रों से वड़ा था। भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।" —(वायु पुराण अ० ३७—५२)

"नाभि राजा से मरुदेवी माता के ऋषभ का जन्म हुआ। ऋषभ से भरत की उत्पत्ति हुई और भरत से इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ।"

—(अग्नि पुराण, १०/१०—११)

"पुरातन समय में ऋषभ का पुत्र मुनि श्रेष्ठ भरत नाम का राजा था। उसके नाम से इस देश का नाम भारत कहा जाता है।"

—(नारद पुराण, पूर्व खण्ड, अ० ४८—५)

"सौ पुत्रों में सबसे बड़ा पुत्र भरत ऋषभदेव जी से उत्पन्न हुआ। उस भरत से इस देश का नाम भारतवर्ष कहा जाता है।"—(विष्णु पुराण, अंश २—अ० १—३२)

"केवल ज्ञान द्वारा सर्वव्यापी, कल्याणस्वरूप, सर्वज्ञाता, यह वृषभनाथ जिनेश्वर मनोहर कैलाश पर्वत पर उतरते हुए ॥५६॥"

—(शिव पुराण)

"नाभिराजा ने मरुदेवी महारानी से मनोहर, क्षत्रियों में प्रधान और समस्त क्षत्रिय वंश का पूर्वज ऐसा ऋषभ नामक पुत्र उत्पन्न किया। ऋषभनाथ से शूरवीर सौ भाइयों में सबसे बड़ा ऐसा भरत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऋषभनाथ उस भरत का राज्याभिषेक करके स्वयं दिगम्बर दीक्षा लेकर मुनि हो गये। इसी आर्य भूमि में इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न नाभिराजा तथा मरुदेवी के पुत्र ऋषभनाथ ने क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य यह दस प्रकार का धर्म स्वयं धारण किया और केवल ज्ञान पाकर उन धर्मों का प्रचार किया।"—(ब्रह्माण्ड पुराण, अ० १४, ५६, ६०)

"प्रत्येक युग में द्वारकापुरी बहुत पुण्यवती दृष्टिगोचर होती है, जहाँ पर चन्द्र के समान मनोहर नारायण जन्म

लेते हैं। पवित्र रैवताचल (गिरनार पर्वत) पर नेमिनाथ जिनेश्वर हुए, जो कि ऋषियों के आश्रय और मोक्ष के कारण थे।" —(प्रभास पुराण)

"शत्रुञ्जय तीर्थ का स्पर्श करके, गिरनार पर्वत को नमस्कार करके, और गजपन्था के कुण्ड में स्नान कर लेने पर फिर जन्म नहीं लेना पड़ता अर्थात् मुक्ति हो जाती है। ऋषभनाथ सर्वज्ञाता, सर्वदृष्टा और समस्त देवों से पूजित हैं। उन निरञ्जन, निराकार, परमात्मा, केवलज्ञानी, तीन छत्र युक्त, पूज्य मूर्ति धारक, महाऋषि, ऋषभनाथ के चरण युगल को हाथ जोड़कर हृदय से आदित्य आदि सुर, नर ध्यान करते हैं।" —(स्कन्द पुराण)

(नोट—शत्रुञ्जय, गिरनार व गजपन्था ये तीनों स्थान जैनियों के तीर्थ क्षेत्र हैं।)

"अपना मनोवांछित कार्य सिद्ध करने के लिए गिरनार पर आया और वामन ने भगवान नेमिनाथ का नाम नेमिनाथ शिव रखा।" —(स्कन्द पुराण, प्रभास खण्ड, अध्याय १६, वस्त्रापथ क्षेत्र माहात्म्य)

"श्री अर्हन्त देव के प्रसाद से मेरे हर समय कुशल है। वह ही जिह्वा है जिससे जिनेन्द्र देव का स्तोत्र पढ़ा जाये, वह ही हाथ हैं जिनसे जिनेन्द्र देव की पूजा की जाये, वह ही दृष्टि है जिससे जिनेन्द्र देव का दर्शन किया जाये और वह ही मन है जो जिनेन्द्र देव में लगा रहे।"

—(स्कन्द पुराण, तीसरा खण्ड (धर्म खण्ड), अ० ३८)

"नाभि का पुत्र ऋषभ और ऋषभ से भरत हुआ। उसी के नाम से यह देश भारत कहा जाता है।"

—(स्कन्द पुराण, माहेश्वर खण्डस्थ कौमार खण्ड ३७-५७)

"जो फल ६८ तीर्थों की यात्रा करने में होता है वह फल आदिनाथ भगवान के स्मरण करने से होता है।"

—(नाग पुराण)

(ऋषभनाथ भगवान को प्रथम तीर्थंकर होने के कारण आदिनाथ भी कहते हैं।)

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभनाथ को आठवां अवतार बतलाकर भागवत पुराण के पाँचवें स्कन्ध के चौथे, पाँचवें और छठे अध्याय में उनका बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है।

इसके अतिरिक्त मोहनजोदारो (पाकिस्तान) की खुदाई से प्राप्त पाँच हजार वर्ष पुरानी मुद्राओं पर भगवान ऋषभदेव की मूर्ति तथा 'नमो जिनेश्वराय' आदि वाक्य अंकित हैं।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सूरदास जी ने श्रीमद्भागवत के आधार पर सूरसागर की रचना की थी। उसमें लिखा है :—

बहुरो रिषभ बड़े जब भये। नाभि राज दे बन को गये ॥
रिषभ राज परजा सुख पायो। जस ताको सब जगमें छायो॥
रिषभदेव जब वन को गये। नवसुत नवौ खण्ड नृप भये ॥
भरत सो भरत खण्ड को राव। करे सदा ही धर्म अरु न्याव॥

—(सूरसागर, पंचम स्कन्ध)

ऊपर लिखित तथ्यों से यह प्रमाणित हो जाता है कि जैन धर्म और उसके प्रचारक तीर्थंकर इन वेदों व पुराणों की रचना काल से भी अत्यन्त प्राचीन हैं।

कुछ इतिहासकार तो जैन धर्म को इस संसार का सबसे प्राचीन धर्म और भगवान ऋषभनाथ को इस युग के सर्वप्रथम धर्म प्रचारक के रूप में स्वीकार करते हैं।

अनेकों इतिहासकारों की यह निश्चित मान्यता है कि वेदों के रचनाकाल और आर्य संस्कृति से पूर्व भारत में जो द्रविड़ संस्कृति फैली हुई थी वह वस्तुतः श्रमण (जैन) संस्कृति ही थी।

प्राचीन काल में जैन धर्म विदेशों में भी फैला हुआ था। यद्यपि वर्तमान में हमें विदेशों में जैन धर्म का प्रभाव दिखलाई नहीं देता परन्तु इतिहासकारों को इस तथ्य के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं कि ईसा से पूर्व जैन साधु (श्रमण) लंका, इंडोनेशिया, तक्षशिला, ईराक, श्याम, फिलस्तीन, मिस्र, यूनान, ईथोपिया, ओकसीनिया, केस्पिया, बलख, समरकन्द आदि देशों में जैन धर्म तथा अहिंसा का प्रचार करते रहते थे। सिकन्दर महान को अपने भारत पर आक्रमण के समय तक्षशिला के पास जो साधु मिले थे वह जैन मुनि ही थे। उन्हीं मुनियों में से एक कल्याण (कोलिनोस) नामक मुनि को वह वापिस जाते समय अपने साथ अपने देश भी ले गया था। दुर्भाग्यवश रास्ते में ही सिकन्दर की मृत्यु हो गयी थी। परन्तु कल्याण मुनि युनान पहुँचे थे और उन्होंने वहाँ जैन धर्म का प्रचार भी किया था। परन्तु कालान्तर में राजनीतिक परिस्थितियों के कारण इन देशों से जैन धर्म का सम्पर्क टूट गया और फिर जैन धर्म की कठोर चर्य्या का पालन न कर सकने के कारण वहां पर श्रमणों व जैन धर्म का अभाव हो गया। मध्य एशिया में अब भी कहीं-कहीं ऐसे स्थान पाये जाते हैं जिनके निवासियों के आचार पर जैन धर्म का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

# अहिंसा—एक विवेचन

भगवान महावीर ने अहिंसा पर सबसे अधिक बल दिया था। उन्होंने कहा था कि जो व्यक्ति सच्चा अहिंसक है, वह दूसरे किसी प्रकार के पाप भी कभी नहीं करेगा। अब हम अहिंसा पर तनिक विस्तार से चर्चा करेंगे।

**हिंसा की परिभाषा**

अपने मन, वाणी और शरीर के द्वारा, जान बूझ कर तथा असावधानी से भी किसी भी प्राणी को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से किसी भी प्रकार का कष्ट पहुँचाना हिंसा है।

**अहिंसा की परिभाषा**

अपने मन, वाणी व शरीर के द्वारा जान-बूझ कर तथा असावधानी से भी, किसी भी प्राणी को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुंचाना और इसी भावना के अनुरूप अपने नित्य कर्म बहुत सावधानीपूर्वक करना अहिंसा है।

**हिंसा के भेद :**—हिंसा के मुख्यतः दो भेद हैं।

(१) भाव हिंसा व (२) द्रव्य हिंसा :—

**भाव हिंसा :**—अपने मन में स्वयं को व अन्य किसी प्राणी को किसी भी प्रकार से कष्ट देने का विचार आना—भाव हिंसा है।

**द्रव्य हिंसा :**—अपनी वाणी व कार्य से, जान-बूझकर तथा असावधानी से भी, स्वयं को व अन्य किसी

प्राणी को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से किसी भी प्रकार का कष्ट पहुंचाना—द्रव्य हिंसा है।

इन दोनों भेदों में भाव हिंसा ही प्रधान है। अपने मन में किसी भी प्राणी के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना आने मात्र से ही हम अपने शुद्ध भावों का घात कर लेते हैं और अपने शुद्ध भावों का घात ही हिंसा है। हमारे मन की दुर्भावना कार्यान्वित हो या न हो, और उससे किसी प्राणी को कष्ट पहुंचे या न पहुंचे, परन्तु इन दुर्भावनाओं के आने मात्र से ही हम हिंसा के दोषी अवश्य हो जाते हैं। इस लिए यदि हमको सच्चा अहिंसक बनना है तो हमारे मन में भी किसी के प्रति किसी प्रकार की भी दुर्भावना नहीं आनी चाहिये।

भगवान महावीर ने हिंसा चार प्रकार की बतलाई है: (१) संकल्पी, (२) विरोधी, (३) आरम्भी और (४) उद्योगी।

(१) **संकल्पी हिंसा** :—जो हिंसा जान-बूझकर, संकल्प करके, योजना बनाकर की जाती है—वह संकल्पी हिंसा कहलाती है। जैसे मांसाहार के लिए पशुओं, पक्षियों, मछलियों आदि जीवों का स्वयं वध करना अथवा इनका मांस खरीद कर खाना; धर्म के नाम पर अथवा अन्य किसी विशेष प्रयोजन से देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशुओं की बलि देना; अपने मनोरंजन के लिए पशु-पक्षियों और मनुष्यों को आपस में लड़ाना; शिकार खेलना; क्रोध से अथवा बदला लेने के लिए किसी को मानसिक और शारीरिक कष्ट पहुंचाना; किसी के धन, स्त्री, सन्तान आदि का अपहरण करना; किसी को कटु वचन बोलना; मांस, रक्त, चमड़ा, हड्डी आदि प्राप्त करने व औषधि बनाने के

लिए किसी प्राणी को शारीरिक कष्ट देना या उसका वध करना, इत्यादि। इस प्रकार के सभी कार्य संकल्पी हिंसा के अन्तर्गत आते हैं।

यहाँ हम एक तथ्य और स्पष्ट कर दें। कोई भी कार्य, वह अच्छा हो या बुरा, नौ प्रकार से किया जाता है—यथा मन से, वचन से व शरीर से तथा स्वयं करके, दूसरों के द्वारा कराकर और कोई अन्य व्यक्ति वह कार्य कर रहा हो तो उसका अनुमोदन करके। जैसे—

(१) अपने मन में स्वयं किसी जीव की हिंसा करने के भाव आने पर—
(२) अपने मन में यह भाव आने पर कि किसी व्यक्ति से उस जीव की हिंसा करने के लिये कहें।
(३) अपने मन में यह भाव आने पर कि कोई व्यक्ति आपही इस जीव की हिंसा कर दे तो वहुत अच्छा हो।
(४) अपने मुख से कहना कि मैं इस जीव की हिंसा करूँगा।
(५) किसी अन्य व्यक्ति से कहना कि इस जीव की हिंसा कर दो।
(६) कोई व्यक्ति किसी जीव की हिंसा करने को कह रहा हो तो उसको अपने वचनों द्वारा और भी प्रोत्साहित करना।
(७) स्वयं जीव की हिंसा करना।
(८) किसी अन्य व्यक्ति से जीव की हिंसा कराना।
(९) कोई अन्य व्यक्ति किसी जीव की हिंसा कर रहा हो तो उसका अनुमोदन करना।

इस प्रकार कोई भी कार्य नौ प्रकार से किया जा

सकता है। इन नौ में से किसी एक प्रकार से भी कार्य करने पर हम उस कार्य के कर्त्ता होने के उत्तरदायित्व तथा उसके अच्छे व बुरे फल से बच नहीं सकते।

(२) **विरोधी हिंसा** :—किसी आक्रमणकारी से अपनी, अपने परिवार और अपने आश्रितों की तथा अपने धन, धर्म, समाज और देश की रक्षा करते हुए, जो हिंसा हो जाती है, वह विरोधी हिंसा कहलाती है।

यहाँ पर "हो जाती है" पद का विशेष महत्व है। संकल्पी हिंसा "की जाती है" अर्थात् जान-बूझकर, योजना बनाकर की जाती है, किन्तु विरोधी हिंसा "हो जाती है"; अर्थात् किसी आक्रमणकारी से अपनी सुरक्षा करते हुए अचानक और कभी-कभी मजबूरी से हो जाती है। परन्तु आक्रमणकारी का प्रतिकार करते हुए हमारे मन में केवल अपनी सुरक्षा करने की भावना ही होनी चाहिए, उसे किसी प्रकार का कष्ट देने, अनुचित रूप से सताने या उससे बदला लेने की भावना नहीं।

(३) **आरम्भी हिंसा** :—प्रत्येक व्यक्ति को गृहस्थ में रहते हुए बहुत से ऐसे कार्य करने ही पड़ते हैं जिनमें हिंसा हो जाना अनिवार्य है। जैसे, घर की सफ़ाई करना, भोजन बनाना, खाद्य पदार्थों को साफ़ करना, कपड़े धोना, मकान बनवाना इत्यादि। इन कार्यों से जो हिंसा हो जाती है उसको आरम्भी हिंसा कहते हैं। यहाँ पर भी हिंसा "हो जाती है," की नहीं जाती। इस प्रकार की हिंसा से बचने के लिए यह आवश्यक है कि हम जो भी कार्य करें बहुत सावधानी से करें। अपने मन में सदैव यही भावना रखें कि मेरे द्वारा किसी भी जीव को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचे। हम अपनी आवश्यकताओं को यथा सम्भव कम करते रहें,

क्योंकि जितनी हमारी आवश्यकताएं कम होंगी उतनी ही हमारी भाग-दौड़ कम होगी और उसी अनुपात से हिंसा भी कम होगी। हमको बेकार की और अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह नहीं करना चाहिए। सफ़ाई करते समय जीव-जन्तुओं की सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए। भोजन की सामग्री भी थोड़ी-थोड़ी ही लानी चाहिए, क्योंकि अधिक मात्रा में संग्रह करने से उनमें चींटी, लट, सुलसुली आदि जीव उत्पन्न हो जाते हैं। चटनी, अचार, मुरब्बे आदि भी थोड़ी मात्रा में ही बनाएं, क्योंकि अधिक पुराने खाद्य पदार्थों में सूक्ष्म जीव उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए उनके सेवन से अधिक हिंसा होती है।

(४) **उद्योगी हिंसा** :—गृहस्थ में रहते हुए प्रत्येक व्यक्ति को अपना, अपने परिवार और अपने आश्रितों का पालन-पोषण करने के लिये व जीविकोपार्जन के लिये कुछ न कुछ उद्योग व व्यवसाय करना ही पड़ता है। ये कार्य करने में हिंसा हो जाना अवश्यम्भावी है। इस प्रकार की हिंसा को उद्योगी हिंसा कहते हैं। हमें ऐसे उद्योग व व्यवसाय तो करने ही नहीं चाहिएं, जिनमें प्रत्यक्ष में ही हिंसा होती है। जैसे माँस, मछली, अण्डे, मुर्गी, खाल, चमड़े, हड्डी व उनसे बनी हुई वस्तुओं का व्यापार। ढलाई करने, भट्टा चलाने व अनाज पीसने के व्यवसाय भी ऐसे हैं, जिनमें हिंसा होने की बहुत अधिक संभावनाएं हैं। इसके विपरीत हमको ऐसे उद्योग व व्यवसाय करने चाहिएं जिनमें हिंसा की सम्भावना कम से कम हो। यदि हम अनाज का व्यापार करते हों तो अधिक लाभ के लालच से अधिक अनाज इकट्ठा न करें, जिससे अधिक दिन पड़े रहने से उसमें जीव उत्पन्न न हो जाएं। हमें ऐसा साफ़-

सुथरा अनाज ही खरीदना व बेचना चाहिए, जिसमें जीव न पड़े हों। यदि हम कागज का व्यापार करें तो कागज को थोड़े-थोड़े समय के बाद उलटते-पलटते रहें, जिससे इसमें दीमक न लगे और हम हिंसा व हानि दोनों से बचे रहें। यदि हमको नौकरी भी करनी पड़े तो ऐसी जगह पर करें, जहां कार्य करते समय हिंसा की सम्भावना कम से कम हो।

## साधुओं की अहिंसा (अहिंसा महाव्रत)

ऊपर बतलाई हुई चार प्रकार की हिंसा में से संकल्पी हिंसा तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए त्याज्य होती है। जहां तक आरम्भी व उद्योगी हिंसा का प्रश्न है, गृहत्यागी साधु को ऐसे कार्य करने ही नहीं पड़ते, इसलिए साधुओं को आरम्भी व उद्योगी हिंसा भी छोड़नी पड़ती है। रही विरोधी हिंसा की बात, तो साधुओं का किसी से वैर व विरोध नहीं होता। यदि कोई जान-बूझकर भी उनको कष्ट पहुंचाता है तो वे उस कष्ट को, उस व्यक्ति के प्रति अपने मन में किसी प्रकार की भी दुर्भावना लाए बिना, समतापूर्वक सहन कर लेते हैं। वे तो यही विचार करते रहते हैं कि उनको जो भी कष्ट मिला है, वह उनके अपने ही द्वारा किये हुए पूर्व कर्मों के फलस्वरूप मिला है। जो व्यक्ति कष्ट दे रहा है वह तो केवल निमित्तमात्र है। इसी कारण उनके मन में किसी के प्रति विरोध की भावना नहीं आती।

इस प्रकार साधु पूर्ण रूप से अहिंसा का पालन करते हैं। वे अपने पास मुलायम तन्तुओं की बनी हुई एक पीछी रखते हैं। जहां पर भी उनको बैठना या कोई वस्तु रखनी होती है वे उस स्थान को पीछी से साफ़ कर लेते हैं जिससे कि किसी जीव को कष्ट न पहुंचे। वे सदैव हितकारी

वचन बोलते हैं। भोजन भी अल्प मात्रा में ग्रहण करते हैं जिससे कि उनका शरीर चलता रहे। वे भोजन में स्वाद व रुचि नहीं लेते।

ऐसे गृह-त्यागी व समताभावी साधु जब देखते हैं कि धर्म, समाज व देश पर कोई ऐसा संकट आया है जो उनके प्रयत्नों से दूर हो सकता है तो वे यथाशक्ति उसको दूर करने का प्रयत्न करते हैं। इसके कारण यदि उनको अपना मुनिपद भी छोड़ना पड़े तो वह उसे भी छोड़ने में संकोच नहीं करते। पर ऐसा वे केवल विशेष परिस्थितियों में और केवल धर्म, समाज व देश के हित के लिए ही करते हैं, अपनी निजी आवश्यकता और स्वार्थ के लिए कभी नहीं करते।

## गृहस्थ की अहिंसा (अहिंसा अणुव्रत)

गृहस्थी के लिए संकल्पी हिंसा तो त्याज्य है ही, बाकी तीन प्रकार की हिंसा से भी उसे यथाशक्ति बचना चाहिए। ऐसा नहीं समझना चाहिए कि इन तीन प्रकार की हिंसा से उसे पाप नहीं होता। पाप तो अवश्य होता है, पर वह उस व्यक्ति की भावना के अनुरूप ही होता है। सावधानी पूर्वक कार्य करते हुए और हिंसा के अवसरों से यथा सम्भव बचते हुए भी जो हिंसा हो जाती है, उसका दोष कम लगता है।

## हिंसा के विविध रूप

कुछ व्यक्ति यह मानते हैं कि केवल किसी मनुष्य की हत्या कर देना ही हिंसा है, इसके अतिरिक्त और किसी भी कार्य से हिंसा नहीं होती। परन्तु यह केवल उनका भ्रम ही है। यदि हम हिंसा की परिभाषा और उसके विवेचन

पर ध्यानपूर्वक विचार करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि हमारे बहुत से कार्य-कलाप हिंसा के अन्तर्गत आ जाते हैं। उनसे बचने के लिए हमको बहुत सावधानी की आवश्यकता है। फिर भी अधिक स्पष्ट करने के लिए हम यहां संक्षेप में हिंसा के विविध रूप दे रहे हैं।

(१) किसी भी प्राणी को कष्ट देना या उसका वध करना तो प्रत्यक्ष में हिंसा है ही, मनुष्यों और पशुओं से उनकी शक्ति से अधिक कार्य लेना या उन पर अधिक बोझ लादना, उनको भूखा रखना, उनको आवश्यकता से कम भोजन देना, समय पर भोजन न देना, उनको अनुचित रूप से बांध कर रखना या अन्य किसी प्रकार के कष्ट देना, किसी से कोई कार्य करा कर उसको उचित पारिश्रमिक न देना, किसी के न्यायोचित अधिकारों का हनन करना, ये सब कार्य भी हिंसा की श्रेणी में ही आते हैं। किसी को ऐसी सलाह देनी जिससे हिंसा को बढ़ावा मिले तथा किसी को हिंसा करने के लिए उपकरण देना तथा प्रोत्साहित करना, अन्याय और बेईमानी करना या इनका समर्थन करना आदि भी हिंसा ही है।

हम कभी-कभी ऐसे कार्य भी करने लगते हैं जिनसे हमारा प्रयोजन तो कुछ भी सिद्ध नहीं होता, परन्तु हम व्यर्थ में ही हिंसा के दोषी हो जाते हैं। जैसे मन में किसी की जय तथा किसी की पराजय तथा अनिष्ट की कामना करनी, हवाई किले बनाना, घास-पेड़-पौधे आदि उखाड़ना, जमीन खोदना, पानी फेंकना, आग जलाना, बेकार में ही उछल-कूद व भाग-दौड़ करना, किसी की ओर कंकर-पत्थर फेंकना, उथला हंसी-मजाक करना और पशु-पक्षियों को परेशान करना आदि। जीवन की आवश्यकताओं की

पूर्ति के लिए तो हमें ऐसे कार्य लाचारी से करने ही पड़ते हैं और ऐसा करने में हम अवश्य ही हिंसा के दोषी हो जाते हैं। परन्तु विना प्रयोजन ऐसे कार्य करने से क्या लाभ ? इसलिए विना प्रयोजन हमें ऐसे कोई भी कार्य नहीं करने चाहिएं जिनमें हिंसा की सम्भावना हो।

कुछ व्यक्ति यह शंका करते हैं कि पृथ्वी, जल व वायु में जीव नहीं होता। परन्तु यह उनका भ्रम है। जल की एक बूंद को यदि हम वहुत शक्तिशाली सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्र (Microscope) से देखें तो हमें उसमें वहुत से चलते-फिरते जीव दिखाई दे जायेंगे। इन यन्त्रों के द्वारा दिखाई देने वाले जीवों के अतिरिक्त भी जल में अन्य अनेकों वहुत ही सूक्ष्म जीव भी होते हैं। इसी प्रकार यदि हम तनिक सी गीली भूमि को भी ध्यानपूर्वक देखें तो उसमें हमें वहुत से वारीक-वारीक जीव चलते-फिरते दिखाई दे जायेंगे। यदि सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्र से देखें तो उस भूमि में और भी वहुत से सूक्ष्म जीव दिखाई दे जायेंगे। पृथ्वी, जल व वायु में जीवन होने का हम एक और प्रमाण देते हैं। जो भूमि जीवन सहित होती है उसमें ही वनस्पति उत्पन्न हो सकती है। जीवन रहित भूमि में कोई भी वनस्पति नहीं उग सकती। यदि किसी भूमि को जला दिया जाये, तो वहां पर चाहे कितना ही पानी दिया जाये उस भूमि पर उपज नहीं हो सकती। यदि हम उस भूमि पर जीवन सहित नई मिट्टी डाल दें, या हल चलाकर नीचे से जीवन सहित नई मिट्टी निकाल लें तो उसमें फिर उपज होने लगेगी। रेगिस्तान की रेत जीवन रहित होती है, उसमें कितना ही पानी सींचा जाये परन्तु उसमें उपज नहीं होती। इसी प्रकार पानी में भी जीवन होता है। साधारण पानी से

सिंचाई करने पर उपज होती है। परन्तु यदि हम बहुत अधिक तापमान पर उबले हुए जल (Distilled water) से सिंचाई करें, तो भूमि चाहे कितनी ही उपजाऊ क्यों न हो उस जल से उपज नहीं हो सकती क्योंकि वह पानी जीवन रहित हो जाता है। इसी प्रकार यदि हम उपजाऊ मिट्टी वाला कोई गमला साधारण जल से सींचकर हवाबन्द (Airtight) बोतल में रख दें और उसकी सारी हवा निकाल दें तो उस गमले में अंकुर नहीं फूटेंगे, क्योंकि वहाँ पर जीवन सहित वायु का अभाव है। इन प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि मिट्टी, जल तथा वायु में भी जीवन होता है। बहुत सम्भव है कि जिस प्रकार श्री जगदीशचन्द्र वसु ने वैज्ञानिक यन्त्रों के द्वारा वनस्पति में जीवन का होना सिद्ध कर दिया है उसी प्रकार कोई वैज्ञानिक पृथ्वी, जल तथा वायु में भी जीवन होना सिद्ध कर दे।

हमको अपने रूप, ज्ञान, शक्ति, धन, कुल व जाति आदि का भी अहंकार नहीं करना चाहिए। मन में ऐसी भावनाओं के आने से हम अपने को ऊंचा और दूसरों को नीचा समझने लगते हैं और अपने ऐसे व्यवहार से दूसरों के हृदयों को ठेस पहुंचाते हैं। इसलिए एक अहिंसक को किसी प्रकार का भी अहंकार नहीं करना चाहिए।

(२) झूठे, कठोर, निन्दा-परक, अप्रिय, कषाय-युक्त, आपस में मनमुटाव व भ्रम पैदा करने वाले वचन बोलना भी हिंसा ही है। क्योंकि इनसे सुनने वाले व्यक्ति को मानसिक क्लेश तो होता ही है, कभी-कभी शारीरिक कष्ट भी पहुंच जाता है। हमें ऐसे सत्य वचन भी नहीं बोलने चाहिएं, जो सुनने वालों को अप्रिय लगें; जैसे किसी नेत्रहीन को अन्धा कहकर पुकारना। हमें ऐसे सत्य वचन भी

नहीं बोलने चाहिएं, जिनसे किसी प्राणी को कष्ट पहुंचने की सम्भावना हो, जैसे किसी शिकारी को यह बतलाना कि पशु अमुक दिशा में गया है।

(३) धन को मनुष्य का प्राण कहा है। धन की हानि होने पर मनुष्य को बहुत कष्ट होता है। इसलिए किसी का धन व अन्य वस्तुएं चोरी करना या छल-कपट से अपहरण करना भी हिंसा ही है।

यदि भूल से किसी व्यक्ति की कोई वस्तु गिर जाये तो ऐसी वस्तु भी हमको नहीं लेनी चाहिए। क्योंकि याद आने पर वह व्यक्ति उस वस्तु को अवश्य खोजेगा और न मिलने पर उसको कष्ट होगा। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति हमारे पास कोई वस्तु धरोहर के रूप में रखकर भूल जाये, तो ऐसी वस्तु को भी अपनी मान लेना अनुचित है। हमको वह धरोहर वापिस कर देनी चाहिए। अपनी वस्तु को भूल जाने के कारण चाहे उस व्यक्ति को कोई कष्ट भले ही न हो, परन्तु हमारे अपने विचार तो खराब हो ही जाते हैं और हम सदैव यही इच्छा करते रहते हैं कि उस व्यक्ति को उस वस्तु की याद न आये तो अच्छा है।

(४) कम तोलना, कम नापना, बढ़िया वस्तु के स्थान पर घटिया वस्तु देना और उसमें मिलावट करना, अधिक मूल्य पर चीजों को बेचना अर्थात् अनुचित लाभ कमाना भी हिंसा है। कम और घटिया वस्तु देने से लेने वाले व्यक्ति को आर्थिक हानि होती है। मिलावटी खाद्य पदार्थों के सेवन से स्वास्थ्य खराब हो जाता है और कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है। मिलावटी औषधियां तो विष के समान ही होती हैं। उचित स्तर की वस्तु के स्थान पर घटिया वस्तु के प्रयोग से बहुधा भयंकर दुष्परिणाम घटित

हो जाते हैं। अधिकतर दुर्घटनाएं तो केवल इसी कारण से ही होती हैं, जिनमें जन-धन की अपार हानि होती है।

एक बात और भी है। कम तोल कर, कम नाप कर, अधिक मूल्य लेकर और बढ़िया वस्तु में घटिया वस्तु मिला कर बेचने से दुकानदार यह समझता है कि उसे अधिक लाभ मिल रहा है, परन्तु यह उसका भ्रम ही है। जब भी ग्राहक को वास्तविकता का पता चलता है वह उस दुकानदार से वस्तुएं खरीदना छोड़ देता है और अपने परिचितों को भी उस दुकानदार की बेईमानी से अवगत करा देता है, जिससे कि उस दुकानदार की साख उठ जाती है और उसका व्यापार ठप्प पड़ जाता है।

इसके विपरीत जो दुकानदार ईमानदारी से व्यापार करता है उस पर ग्राहकों का विश्वास बढ़ता जाता है और धीरे-धीरे उसके व्यापार में उन्नति होती जाती है।

बड़ी-बड़ी प्रसिद्ध मिलों का माल बन्द गठरियों और पेटियों में केवल विश्वास के बल पर ही प्रतिदिन लाखों रुपये का बिकता है, क्योंकि ग्राहक को यह विश्वास होता है कि इस गांठ अथवा पेटी में वही वस्तु होगी, जिसका उस पर लेबिल लगा हुआ है। यदि ऐसा न हो और प्रत्येक व्यक्ति ही बेईमानी करने लग जाये तो संसार में प्रतिदिन जो अरबों रुपये का व्यापार होता है वह बन्द हो जाये।

हम एक बात और स्पष्ट कर दें, मान लीजिये आप एक व्यापारी हैं। आपके पास अन्य वस्तुओं के साथ-साथ आपकी असावधानी से कोई घटिया वस्तु या खोटा सिक्का आ जाता है। आपको इस बात का पता भी नहीं चलता और साधारण रूप में ही वह घटिया वस्तु या खोटा सिक्का आपके पास से निकल जाता है तो आपको कोई दोष नहीं

लगेगा। परन्तु यदि आपको इस तथ्य का पता चल जाता है कि वह वस्तु समुचित स्तर की नहीं है तथा यह सिक्का खोटा है फिर भी यदि आप उसको चलाने का प्रयत्न करते हैं तो आप अवश्य ही दोषी हो जाते हैं। क्योंकि उस समय आपके मन में यह विकार आ जाता है कि ग्राहक इस घटिया वस्तु को तथा खोटे सिक्के को बिना देखे-परखे ही ले जाये। आप यह तर्क देकर अपने दोष से बच नहीं सकते कि हमारे पास भी तो यह घटिया वस्तु या खोटा सिक्का पूरे मूल्य में ही आया था। हमने अनुचित लाभ के लालच में अपनी ओर से यह घटिया वस्तु तथा खोटा सिक्का नहीं लिया। सोचने की बात तो यह है कि आपने अपनी असावधानी से अगर घटिया वस्तु ले ली है तो आपके ग्राहक इसका दण्ड क्यों भुगतें ?

(५) किसी के साथ विश्वासघात करना, देश से द्रोह करना, पारिश्रमिक लेकर भी समुचित कार्य न करना, अपने कर्तव्य की अवहेलना करना, किसी की लाचारी का अनुचित लाभ उठाना, अनुचित किराया व अनुचित व्याज लेना, शासन द्वारा लगाये गये करों की चोरी करना, शासन के नियमों को तोड़ना, झूठे पत्रक बनाना, घूस लेना व देना आदि कार्य भी हिंसा के ही रूप हैं।

इसी प्रकार एक वकील (न्याय के रक्षक) होते हुए झूठे मुकदमों की पैरवी करनी, तथा किसी को बेईमानी करने की सलाह देनी; एक न्यायाधीश होते हुए उचित न्याय न करना, तथा रिश्वत लेकर अथवा किसी के प्रभाव में आकर न्याय के विपरीत निर्णय देना भी हिंसा की श्रेणी में ही आते हैं। ऐसे कार्यों से प्रत्यक्ष में हिंसा होती हुई दिखाई न देती हो, परन्तु इनसे समाज में व देश में अराज-

कता, अशान्ति व भ्रष्टाचार फैलता है, जिनके परिणाम सदैव खराव ही निकलते हैं।

(६) किसी के साथ बलात्कार या इसी प्रकार की अनधिकार कुचेष्टा करना भी हिंसा है। इससे पीड़ित व्यक्ति को शारीरिक व मानसिक कष्ट पहुँचता है और कभी-कभी उसका सारा जीवन ही नष्ट हो जाता है। वेश्यागमन व पर-स्त्रीगमन जैसे जघन्य कार्य भी हिंसा की श्रेणी में ही आते हैं। इन कार्यों से व्यक्ति का धन व स्वास्थ्य नष्ट होता है, परिवार में कलह वढ़ती है, आपस में वैमनस्य वढ़ता है और कभी-कभी इसके फलस्वरूप हत्याएँ भी हो जाती हैं। ऐसे कार्यों से समाज में व्यभिचार की प्रवृत्ति भी वढ़ती है।

(७) अपनी तृष्णा पर अंकुश न लगाकर आवश्यकता से अधिक धन और दूसरी चीजों का संग्रह करना भी हिंसा है। प्रत्येक व्यक्ति का यह प्रतिदिन का अनुभव है कि अपनी आवश्यकता के अनुसार तो व्यक्ति ईमानदारी और उचित साधनों से कमा लेता है, पर अधिक कमाई के लिए वह अनुचित साधनों का सहारा लेता है। इस प्रकार अधिक धन संग्रह करने की प्रवृत्ति से अनुचित कार्यों को वढ़ावा मिलता है और गरीबी-अमीरी का भेद वढ़ता है, जिससे वर्ग-संघर्ष की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त अनुचित साधनों से कमाया हुआ धन अधिकांश में फ़िज़ूल खर्ची और अनुचित कार्यों—मद्य, मांस, व्यभिचार, जुए इत्यादि में ही व्यय होता है। इसी कारण अमीरों की सन्तान वहुधा गलत रास्तों पर पड़ जाती है।

एक विचारक ने कहा है कि व्यक्ति की तृष्णा कभी पूरी नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति की तृष्णा का गड्ढा इतना

वड़ा है कि यदि उसमें तीनों लोकों की सम्पदा भी डाल दी जाये तो भी वह खाली ही रहता है।

यह जन साधारण के अनुभव की वात है कि धन-सम्पदा तो भाग्य से मिलती है। यदि आपके भाग्य में धन है तो वह अच्छे साधनों के द्वारा भी मिलेगा। यदि भाग्य में धन नहीं है तो आप कितने ही अनुचित कार्य क्यों न कर लें आप निर्धन ही रहेंगे। हाँ, अनुचित कार्य करके अपने सिर पर पाप का वोझ अवश्य वढ़ा लेंगे। इसका यह अर्थ नहीं कि हम भाग्य के भरोसे हाथ पर हाथ रखकर निठल्ले वैठ जायें। इसके विपरीत मनुष्य को सदैव ही पुरुषार्थ करते रहना चाहिये, पर उसके साधन समुचित हों, इसका वरावर ध्यान रखना चाहिए। समुचित साधनों द्वारा किये गये पुरुषार्थ का फल देर या सवेर अवश्य ही अच्छा मिलेगा।

एक वात और है। हमारा सवका मुख्य लक्ष्य सुख-शान्ति से जीवन व्यतीत करना है। क्या धन-सम्पदा से हमें सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है? धन से कुछ आरामदायक साधन अवश्य खरीदे जा सकते हैं, परन्तु सुख-शान्ति नहीं। आज भी कितने ऐसे धनवान हैं, जिनको सच्चा सुख और शान्ति नसीव है?

वहुत से व्यक्तियों की यह आदत होती है कि वे दूसरों की देखा-देखी अनावश्यक वस्तुएँ जैसे कपड़े, जूते, फ़रनीचर आदि इकट्ठी करते रहते हैं। ऐसा करने में कुछ व्यक्तियों के पास तो वे वस्तुएँ फ़ालतू पड़ी रहती हैं, जवकि हजारों दूसरे व्यक्ति उनके अभाव में वहुत कठिनाई में जीवन विताते हैं। फ़रनीचर आदि की सफ़ाई करने में सूक्ष्म जीवों की हत्या भी होती है। यदि आप भाग्यशाली हैं और धनवान

ह ता अनावश्यक वस्तुएं खरीदने के वजाय उस धन को दीन-दुखियों की सेवा व उनके अभावों को दूर करने में लगायें। इससे उनके कष्ट दूर होंगे और आप को शान्ति मिलेगी।

(८) सिगरेट, सिगार, वीड़ी, हुक्के आदि का सेवन भी हिंसा है। इनके तम्बाकू से जो विषैला धुआं निकलता है वह इनके सेवन करने वालों के कलेजों को छलनी कर देता है। तम्बाकू में निकोटिन, कार्बन मोनोक्साइड, अमोनिया, कार्बोलिक एसिड आदि वहुत से विष होते हैं, जो इनके सेवन करने वालों और उनके पास वैठने वालों तक में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं। इसीलिए पश्चिमी देशों में सिगरेट की प्रत्येक डिव्वी पर यह शब्द छपे हुए होते हैं 'यह विष है और इसके सेवन से मृत्यु हो सकती है।' वहुत वार सिगरेट, वीड़ी, हुक्के से अग्निकांड भी हो जाते हैं, जिनके फलस्वरूप जन-धन की अपार हानि होती है।

इसके अतिरिक्त सिगरेट, वीड़ी का सेवन व्यक्ति के नैतिक पतन की प्रथम सीढ़ी है। सर्व प्रथम किशोर वालक अपने मित्रों के आग्रह पर और अपने वड़ों की देखा-देखी और फ़ैशन समझ कर सिगरेट, वीड़ी पीना आरम्भ करते हैं और फिर धीरे-धीरे चरस, गांजा, मदिरा आदि का सेवन भी आरम्भ कर देते हैं।

इसलिए एक अहिंसक व्यक्ति को इन पदार्थों के सेवन से दूर ही रहना चाहिए।

(९) मदिरा और दूसरी नशीली वस्तुओं का सेवन भी हिंसा को प्रोत्साहन देता है। नशीली वस्तुओं के सेवन से हमारे धन के साथ-साथ हमारा स्वास्थ्य भी नष्ट होता है।

ये हमारे विवेक को हर लेती हैं, जिससे हमको अच्छे व बुरे की पहचान भी नहीं रहती। अधिकतर हत्यायें, बलात्कार व दूसरे जघन्य कुकृत्य मदिरापान की अवस्था में ही किये जाते हैं। सड़कों पर अधिकांश दुर्घटनाएँ नशे की हालत में गाड़ियाँ चलाने के कारण ही होती हैं।

मदिरा पीने वाले व्यक्ति का कितना चारित्रिक और नैतिक पतन होता है यह किसी से छिपा नहीं है। मदिरा के नशे में व्यक्ति अपने देश के भेद शत्रुओं को दे देते हैं और देश के साथ गद्दारी करते हैं। मदिरा के सेवन से घर में कलह पनपती है। जो पैसा परिवार के पालन-पोषण में खर्च होना चाहिए था, वह मदिरा में फुंक जाता है। मदिरा पीने से घर ही नष्ट नहीं होते, अपितु जिस राष्ट्र में मदिरापान बढ़ जाता है उस राष्ट्र का भी पतन हो जाता है। इतिहास साक्षी है कि बड़े-बड़े साम्राज्यों और राष्ट्रों का पतन सुरा और सुन्दरियों के कारण ही हुआ है।

जिन देशों के नवयुवकों में मदिरापान बढ़ता जा रहा है, वहाँ के विचारक इससे बहुत चिन्तित हैं और वहाँ के शासक नवयुवकों में मदिरापान को कम करने के लिये आवश्यक पग उठा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त मदिरा बनाने में भी अत्यधिक हिंसा होती है। जिस वस्तु की मदिरा बनानी होती है, उसको सड़ाया जाता है। इससे उसमें असंख्य सूक्ष्म और स्थूल जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। फिर उसका आसव खींचा जाता है। इस प्रकार मदिरा असंख्य जीवों का कलेवर होती है। तैयार हो जाने के पश्चात् भी मदिरा में प्रति समय असंख्य सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होती रहती है।

यहाँ पर एक तथ्य और भी ध्यान में रखने योग्य है। मदिरापान का स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। चाहे वह ब्राण्डी हो, ह्विस्की हो, बीयर हो अथवा शराब हो, स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि में ये सब विष ही हैं और शरीर के लिये सर्वथा विजातीय द्रव्य हैं। अत्यधिक मदिरा-पान के परिणाम तो सभी जानते हैं; परन्तु यदि ये विष थोड़ी मात्रा में भी सेवन किये जायें तो भी हानिकारक ही होते हैं।

कुछ व्यक्तियों को यह भ्रम है कि मदिरा शक्तिवर्द्धक है और इसके पीने से मुख पर व आंखों में तुरन्त ही लाली आ जाती है। परन्तु यह लाली शक्ति की नहीं होती। वास्तविकता तो यह है कि इन विजातीय द्रव्यों के शरीर में जाते ही शरीर के कोषाणु संघर्षशील हो जाते हैं और हृदय द्रुत गति से रक्त फेंकने लगता है। शरीर के इसी अन्तर्द्वन्द्व से उत्पन्न लाली मुख पर तथा आँखों में प्रकट होती है। अन्त में संघर्षशील शरीर मदिरा पर विजय पाकर निढाल हो जाता है। उस निर्बलता को दूर करने के लिये व्यक्ति पुनः मदिरा पीता है और यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है तथा संघर्षशील शरीर अपनी शक्ति खोता रहता है। धीरे-धीरे करके मदिरा उस पर हावी होती जाती है और इसका अन्तिम परिणाम किसी से छिपा हुआ नहीं है। मदिरा पीने वाला व्यक्ति अपने शरीर में कितना विष डालता रहता है, इस तथ्य का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यदि एक औंस अल्कोहल (शराब) किसी स्वस्थ कुत्ते को खाली पेट पिला दी जाये, तो उसका जीवित रहना बहुत कठिन हो जाता है।

कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि जब प्राचीन काल से ही

मदिरा का सेवन प्रचलित रहा है, तब यह बुरी कैसे हो सकती है ? इस सम्बन्ध में निवेदन है कि प्रथम तो इस बात का ही निश्चय नहीं है कि प्राचीन काल में प्रचलित सोमरस वास्तव में मदिरा ही था अथवा अन्य कोई शक्ति-वर्द्धक पेय था। दूसरे यह कि यदि कोई बुराई प्राचीन काल से चली आ रही है तो क्या वह बुराई नहीं रहती ? क्या वह अच्छाई में बदल जाती है ? यह सर्वविदित है कि विभिन्न धर्मों की प्राचीन काल की धार्मिक पुस्तकों में मदिरापान की सदैव निन्दा ही की गयी है। तथ्य यह है कि बुरी वस्तु चाहे वह नयी हो या पुरानी सदैव बुरी ही रहेगी, अतएव त्याज्य ही होगी।

(१०) शहद भी हिंसा के द्वारा ही प्राप्त होता है। वह मक्खियों द्वारा उगला हुआ रस होता है। इसको प्राप्त करने में अनगिनत मक्खियों व उनके अण्डों का विनाश होता है। इसके पश्चात् भी इसमें असंख्य जीवाणु उत्पन्न होते रहते हैं। इसलिए एक अहिंसक व्यक्ति को शहद का सेवन भी नहीं करना चाहिये।

(११) रेशमी वस्त्रों का उत्पादन भी हिंसा के द्वारा ही होता है। रेशम प्राप्त करने के लिये असंख्य रेशम के कीड़ों को पानी में उबाला जाता है। इसलिए अहिंसक व्यक्ति को रेशम व रेशमी कपड़ों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(१२) खाल व चमड़ा तो हिंसा के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। मोटा तथा मुलायम चमड़ा प्राप्त करने के लिये जीवित पशुओं के ऊपर उबलता हुआ पानी डाला जाता है और उनको बेंतों से पीटा जाता है। इसके पश्चात् जीवित अवस्था में ही उनकी खाल खींच ली

जाती है। इस प्रकार चमड़ा प्राप्त करने के लिये पशुओं का वहुत ही निर्दयतापूर्वक वध किया जाता है।

इसी प्रकार बहुत मुलायम खाल प्राप्त करने के लिये गर्भिणी मादा पशुओं का वध करके उनके गर्भ के वच्चों को निकाल कर उनका वध किया जाता है, क्योंकि इन वच्चों की खाल बहुत मुलायम होती है।

रंग-बिरंगी सुन्दर खालें प्राप्त करने के लिए कुछ व्यक्ति घड़ियालों और अन्य ऐसे ही सुन्दर खाल वाले और सुन्दर पंख व बाल वाले पशु-पक्षियों को विशेष रूप से पालते हैं। जव उनके वच्चे वड़े हो जाते हैं तो उनका वध करके उनकी खाल व पंख उतार लेते हैं और इस प्रकार यह हिंसा का ताण्डव-नृत्य चलता रहता है। एक अहिंसक व्यक्ति को ऐसी वस्तुओं का प्रयोग भी नहीं करना चाहिये।

(१३) भोजन के लिए मांस व अण्डे तो हिंसा के द्वारा ही प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार मनोरंजन के लिए शिकार करने में भी प्रत्यक्ष ही हिंसा होती है। (मांसाहार पर हमने अगले पृष्ठों में भी विस्तृत विवेचन किया है।)

(१४) जुआ खेलने से भी हिंसा को वढ़ावा मिलता है। वहुधा देखा जाता है कि धन के लोभ में जुआरी एक-दूसरे से मार-पीट करते हैं और कभी-कभी एक-दूसरे की हत्या भी कर देते हैं। जुए में जीता हुआ धन भी अच्छे कार्यों में नहीं लगता। उसको अधिकांश में मांसाहार, मदिरापान व वेश्या-गमन जैसे जघन्य कार्यों में ही व्यय किया जाता है। जुए में जो हारता है वह तो वरवाद होता ही है, जीतने वाले को भी अन्ततः वरवादी ही मिलती है।

(१५) आजकल कुछ औषधियाँ भी पशुओं के मांस,

रक्त, जिगर व दूसरे अंगों से बनाई जाती हैं; जैसे कि मछली के तेल, पशुओं के जिगर व दूसरे अंगों से तैयार किये हुए इंजेक्शन इत्यादि। बछड़ों को चेचक निकाल कर उनके ज़ख्मों के रस से चेचक का टीका बनाया जाता है। इसी प्रकार घोड़े को सांप से डसवाकर उसके ज़हरीले खून से सर्पदंश के इलाज के लिए टीका बनाया जाता है। एक अहिंसक व्यक्ति को ऐसी औषधियों का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त औषधियों पर अनुसन्धान करने वाले चिकित्सक खरगोशों, चूहों, बन्दरों, सूअरों, मेंढकों, मुर्गियों इत्यादि मूक प्राणियों पर अपने प्रयोग करते हैं। इन प्रयोगों से इन प्राणियों को अपार कष्ट होता है। प्रतिदिन हजारों पशु इस प्रकार के अनुसन्धानों के शिकार होते हैं। एक अहिंसक व्यक्ति को इस प्रकार के निर्दयतापूर्ण अनुसन्धानों को कभी नहीं करना चाहिए।

कुछ व्यक्ति शाकाहारी होते हुए भी बीमारी की अवस्था में पशुओं के अंगों से बनी औषधियां तथा मांस व अण्डे खाने लगते हैं। वे यह तर्क देते हैं कि जान है तो जहान है, हम अपनी खुशी से तो खा नहीं रहे हैं। डाक्टर ने हमें बतलाया है तो मजबूरी में खा रहे हैं। परन्तु उनका यह तर्क उचित नहीं है। क्योंकि मांसाहार प्रत्येक दशा में बुरा है। फिर बुरा समय पड़ने पर ही तो मनुष्य की परीक्षा होती है। डाक्टर किसी को मांस व अण्डे खाने को मजबूर नहीं करते। वे तो केवल सलाह भर देते हैं। यदि हमारी इच्छाशक्ति प्रबल है तो हम मांस व अण्डे के बिना भी स्वस्थ हो सकते हैं। फिर, जो पोषक तत्व हमें मांस व अण्डे से मिलते हैं उनसे अधिक पोषक तत्व हमें दूध, फल

व मेवों आदि से प्राप्त हो सकते हैं। आयुर्वेद में ऐसी वहुत सी औषधियाँ हैं, जिनसे कठिन से कठिन रोग ठीक हो जाते हैं और हमको मांसाहार की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। फिर, इस वात का भी क्या विश्वास है कि मांसाहार से हम नीरोग हो ही जायेंगे ? और फिर क्या सभी मांसाहारी व्यक्ति स्वस्थ ही रहते हैं ? प्रायः यह देखा जाता है कि मांसाहारी व्यक्ति कई प्रकार के ऐसे रोगों से पीड़ित रहते हैं जो शाकाहारियों को नहीं होते। मुख्य प्रश्न तो यह है कि इस क्षणिक जीवन के लिए हम कितने जीवों की हिंसा करते रहेंगे ? हमें यह समझ लेना चाहिए कि मांसाहार प्रत्येक अवस्था में हिंसा है और वह हिंसा ही रहेगा चाहे वह लाचारी से किया जाये चाहे प्रसन्नतापूर्वक।

(१६) आजकल नकली मोती प्राप्त करने के लिए विशेष रूप से सीपियों को पाला जाता है। उनको एक विशेष प्रकार की गोली खिलाई जाती है। कुछ दिनों में उस गोली पर कोई पदार्थ इस प्रकार चढ़ जाता है जिससे वह मोती के समान दिखलाई देने लगती है। फिर सीप को काट कर वे मोती निकाल लिए जाते हैं। आजकल वाजार में अधिकतर ऐसे ही मोती मिलते हैं। असली मोती भी सीपियों की हत्या करके ही प्राप्त होते हैं। इसलिए एक अहिंसक व्यक्ति को न तो मोती पहनने चाहिएं और न दवाई के रूप में उनका सेवन करना चाहिए।

ऊपर हमने जिन वस्तुओं का उल्लेख किया है, जिनका उत्पादन हिंसा के द्वारा होता है उनके सम्बन्ध में यदि कोई प्रयोग करने वाले यह तर्क करने लगें कि हम तो पहले से ही उत्पादित वस्तुओं को खरीदते हैं, किसी से हिंसा करने

को नहीं कहते, इसलिए हम हिंसा के दोषी कैसे हुए ? तो उनका यह तर्क युक्तिसंगत नहीं होगा। निर्माता केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करता है जिनकी ग्राहकों में मांग होती है। यदि व्यक्ति इन वस्तुओं का प्रयोग नहीं करें, तो निर्माता इन वस्तुओं का उत्पादन कभी न करें। जैसे-जैसे इन वस्तुओं की मांग बढ़ती जा रही है, यह हत्याकाण्ड भी बढ़ते जा रहे हैं। इसलिए इन वस्तुओं का प्रयोग करने वाले भी हिंसा के दोष से बच नहीं सकते।

(१७) अपने भोजन में भी हमें इस प्रकार का विवेक रखना चाहिए कि जो भी वस्तु हम सेवन करें वह शुद्ध व सात्विक हो और उसमें किसी भी प्रकार के स्थूल व सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति न हुई हो। गोभी, गूलर, अंजीर इत्यादि में और सड़ी-गली व कानी सब्जियों में तो प्रत्यक्ष ही जीव देखे जा सकते हैं। खमीर, पनीर, सिरके, आसव तथा बहुत दिनों के अचार व मुरब्बे आदि खाद्य पदार्थों में भी सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। हमें ऐसे खाद्य पदार्थों के सेवन से यथासम्भव बचना चाहिए। भोजन का हमारे स्वास्थ्य व मन से बहुत गहरा सम्बन्ध है। यदि हम शुद्ध व सात्विक भोजन करेंगे तो हमारा स्वास्थ्य ठीक रहेगा, मन प्रसन्न रहेगा और हम बहुत से रोगों से भी बचे रहेंगे।

आलू, कचालू, मूली, गाजर, जमीकन्द आदि जो सब्जियां जमीन के अन्दर पैदा होती हैं उनमें अन्य सब्जियों की अपेक्षा बहुत अधिक सूक्ष्म जीव होते हैं। इसलिए हमें यथासम्भव जमीन के ऊपर ही उगी सब्जियों का सेवन करना चाहिए।

(१८) खेती के विशेषज्ञ, खेती को खराब करने वाले

कीड़ों, चूहों, पक्षियों, वन्दरों आदि को मारने की सलाह देते हैं। इस सम्वन्ध में अधिकारिक रूप से तो मैं कुछ नहीं कह सकता कि इस हत्याकाण्ड से खेती को दूरगामी लाभ होता है या नहीं, पर इतना अवश्य है कि यह हिंसा है और हिंसा का परिणाम कभी भी अच्छा नहीं होता। कई जगह तो खेती की रक्षा के लिए, इन कीड़ों व पशु-पक्षियों की हत्या करने के परिणाम खराव ही निकले हैं। क्योंकि जव इन कीड़े व पशु-पक्षियों को समाप्त कर दिया गया, तो अन्य प्रकार के खेती को हानि पहुंचाने वाले कीड़े, जिनको ये कीड़े व पशु-पक्षी खा लिया करते थे, वहुत वढ़ गये और उनके कारण खेती को वहुत हानि हुई। जहाँ तक मैं समझता हूं प्रकृति ने स्वयं ही ऐसी व्यवस्था कर रखी है जिससे खेती को हानि न पहुंचे। आजकल अनाज की फ़सलों और सब्जियों व फलों के वृक्षों को कीटाणुओं से बचाने के लिए उन पर कीटाणुनाशक औषधियां छिड़की जाती हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने खोज करके वतलाया है कि फ़सलों व वृक्षों पर कीटाणुनाशक औषधियां छिड़कने से इन औषधियों के विषैले तत्व उन खाद्य पदार्थों को भी दूषित कर देते हैं और जो व्यक्ति ऐसे खाद्य पदार्थों का सेवन करते हैं उन पर भी इन विषैली औषधियों का वुरा प्रभाव पड़ता है। यद्यपि इन विषैले तत्वों की मात्रा वहुत कम होने से इनका तुरन्त ही कोई वुरा परिणाम दिखाई नहीं देता, परन्तु यह मन्द-गति विष (Slow Poison) के समान कार्य करते हैं।

(१९) हमें दूसरे के विचारों का भी आदर करना चाहिए और अपने हृदय में भी सहनशीलता रखनी चाहिए। यदि दूसरा व्यक्ति किसी विषय पर हम से भिन्न विचार

रखता हो तो हमें उससे द्वेष नहीं रखना चाहिए, अपितु उसके विचारों को शान्ति और धैर्यपूर्वक सुनना व समझना चाहिए और अपने विचार भी उसको शान्ति से समझाने चाहिएं। यह सम्भव है कि वह ठीक हो और हम ही भ्रम में हों।

एक बात और है। प्रत्येक वस्तु में भिन्न-भिन्न अपेक्षा से बहुत से गुण होते हैं। उनमें से कुछ गुण एक-दूसरे के विरोधी भी होते हैं। जैसे राम अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र है और अपने पुत्र की अपेक्षा से पिता है। इस प्रकार राम एक समय में ही पिता भी है और पुत्र भी है। पांच इंच की एक रेखा तीन इंच की रेखा से बड़ी है, परन्तु वही पांच इंच की रेखा सात इंच की रेखा से छोटी है। इस प्रकार वह पांच इंच की रेखा एक ही समय में छोटी भी है और बड़ी भी। यदि कोई व्यक्ति यह हठ करने लगे कि राम केवल पिता ही है और रेखा केवल छोटी ही है तो यह उसका दुराग्रह ही कहा जायगा। इस सम्बन्ध में एक हाथी और छः नेत्रहीनों की कहानी भी विचारणीय है। जिस नेत्रहीन ने हाथी के कान को छुआ था वह हाथी को पंखे के समान ही मानता था। जिस नेत्रहीन ने हाथी के पांव को छुआ था वह उसको एक स्तम्भ के समान ही मानता था। इस प्रकार हाथी के सम्बन्ध में प्रत्येक नेत्रहीन की, उसके अपने द्वारा छुए हुए अंग के अनुसार अलग-अलग मान्यता थी; जबकि वास्तव में हाथी उन सब नेत्रहीनों की मान्यताओं को एक साथ मिलाकर देखने पर ही बनता था। हमको यह भी नहीं भूलना चाहिए कि हम भी उन नेत्रहीनों के समान अल्पज्ञ हैं। हम भी वस्तु को पूर्ण रूप से न जान-कर केवल उसका थोड़ा सा भाग ही जानते हैं। इसलिए

हमको अपने थोड़े से ज्ञान पर गर्व न करके दूसरों के विचारों का भी आदर करना चाहिए। "जो मेरा है वह सत्य है" इस प्रकार का दुराग्रह छोड़कर हमको कहना चाहिए कि "जो सत्य है वह मेरा है।" ऐसे विचार रखने से तथा इसी प्रकार का व्यवहार करने से अहिंसा व शान्ति को बहुत बढ़ावा मिलता है। इसके विपरीत केवल अपनी ही बात का दुराग्रह करने से द्वेष फैलता है, और हिंसा को बढ़ावा मिलता है।

इस प्रकार ऊपर लिखे व ऐसे ही अन्य कार्यों से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा होती है व हिंसा को बढ़ावा मिलता है। ये कार्य ऐसे नहीं हैं कि जिनके बिना हम अपना जीवन व्यतीत न कर सकें। हमें ऐसे कार्यों का यथासम्भव त्याग कर देना चाहिए। हम जो भी कार्य करें बहुत ही सावधानी व विवेकपूर्वक करें और अपने मन में सदैव इस प्रकार की भावना रखें कि हमारे किसी भी कार्य से किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुंचे।

सावधानी पूर्वक कार्य करने से अहिंसा धर्म के पालन के साथ-साथ अपनी भलाई भी होती है। यदि हम देख-भाल कर चलेंगे तो इससे दूसरे जीवों की रक्षा तो होगी ही, हमारा स्वयं का पैर भी किसी गड्ढे व कीचड़ में नहीं धंसेगा और पत्थर आदि से नहीं टकरायेगा। इसी प्रकार बिना देखे-भाले कपड़े पहनने से हमें कई बार विषैले जीव-जन्तु काट लेते हैं। बिना देखे-भाले तथा रात्रि को भोजन करने से विषैले जीव-जन्तु व अन्य हानिकारक पदार्थ हमारे पेट में चले जाते हैं, जिससे कि हमको कष्ट उठाना पड़ता है। हम प्रतिदिन समाचारपत्रों में ऐसी असावधानी से हुई दुर्घटनाओं के समाचार पढ़ते रहते हैं।

इसके साथ-साथ हमें अपनी आवश्यकताओं को भी सीमित रखना चाहिए और उन्हें यथासंभव घटाते रहना चाहिए। जितनी हमारी आवश्यकताएं कम होंगी, उतनी ही उनके लिए भाग दौड़ कम होगी और फलस्वरूप हिंसा होने की सम्भावना भी कम होगी। आवश्यकताएं कम करने का अर्थ यह नहीं है कि हम निठल्ले बैठे रहें, अपितु आवश्यकताएं कम करने का अभिप्राय अपनी तृष्णा और अपनी लोभवृत्ति, अपनी जिह्वा की स्वाद-लिप्सा व बेकार का दिखावा कम करने से है। हमको अपना बचा हुआ समय दूसरों का उपकार करने, पठन-पाठन और चिन्तन व मनन करने में लगाना चाहिए।

## हिंसा और अहिंसा में अन्तर

हम पहले ही कह आए हैं कि हिंसा और अहिंसा का हमारे हृदय की भावनाओं से गहरा सम्बन्ध है। बहुत से कार्य ऐसे होते हैं कि जिनको देखने से यह लगता है कि ये हिंसा के कार्य हैं, परन्तु वहाँ हिंसा नहीं होती या बहुत कम होती है। दूसरी ओर कुछ ऐसे कार्य हैं जो देखने में हिंसायुक्त नहीं लगते, परन्तु वे हिंसा की श्रेणी में आते हैं। कुछ उदाहरणों से यह तथ्य बिलकुल स्पष्ट हो जायेगा।

एक शल्य चिकित्सक एक रोगी की शल्य-क्रिया कर रहा है। चिकित्सक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान व अभ्यास है। वह बहुत सावधानीपूर्वक अपना कार्य कर रहा है और उसकी यही भावना है कि रोगी स्वस्थ हो जाए। इतना सब होने पर भी रोगी की मृत्यु हो जाती है। साधारण रूप से देखने पर शल्य-क्रिया के कारण रोगी को कष्ट होने तथा उसकी मृत्यु होने से यह कार्य हिंसा का

दिखलाई देता है, परन्तु इसमें हिंसा नाममात्र को भी नहीं है। क्योंकि चिकित्सक का उद्देश्य रोगी को किसी प्रकार का कष्ट पहुंचाना नहीं था, वरन् उसका उद्देश्य तो रोगी को ठीक करना ही था। ऐसी दशा में न तो कोई व्यक्ति उस चिकित्सक को दोषी ठहराता है, न उसके प्रति किसी के मन में कटुता आती है।

इसी प्रकार किसी व्यक्ति के फोड़ा हो रहा है। चिकित्सक उस फोड़े को चीरा लगाता है, जिसके कारण उस व्यक्ति को वहुत पीड़ा होती है, परन्तु चिकित्सक के इस कार्य को हम हिंसा नहीं कह सकते।

माता-पिता व गुरु आदि वालक को सही रास्ते पर लाने के लिए दण्ड देते हैं, इसी प्रकार एक न्यायाधीश एक अपराधी को दण्ड देता है। यद्यपि इस दण्ड के कारण उस वालक को और उस अपराधी को मानसिक व शारीरिक कष्ट पहुँचता है, परन्तु फिर भी माता-पिता व न्यायाधीश हिंसक नहीं हैं, क्योंकि उनके मन में उस वालक व अपराधी के प्रति कोई दुर्भावना या वदला लेने की भावना नहीं है, अपितु वे तो उसकी भलाई ही चाहते हैं। यदि माता-पिता ऐसा नहीं करें तो वह वालक कुमार्ग पर पड़ जायेगा। इसी प्रकार यदि न्यायाधीश अपराधियों को दण्ड नहीं दें तो वे अपराधी और अधिक अपराध करेंगे और समाज व देश में अराजकता व अशान्ति वढ़ेगी।

इसके विपरीत कोई व्यक्ति शस्त्र से हम पर वार करता है। उसका उद्देश्य हमारी हत्या करना अथवा हमें चोट पहुँचाना है। हम उसके वार से घायल हों या न हों—वह व्यक्ति हिंसक है, क्योंकि उसका अभिप्राय हमको कष्ट

पहुँचाना था। लौकिक नियमों के अनुसार भी वह व्यक्ति अपराधी माना जाता है।

एक वेश्या अथवा एक ठग किसी धनी व्यक्ति को विभिन्न प्रकार से फुसलाते हैं और उसको प्रसन्न करते हैं। परन्तु उनका यह कार्य सुखद होते हुए भी हिंसा के अन्तर्गत ही आयेगा, क्योंकि उस वेश्या व ठग का उद्देश्य किसी-न-किसी प्रकार से उस व्यक्ति के धन का अपहरण करना है।

एक शिकारी दिन भर शिकार की खोज में फिरता रहता है, परन्तु उसके हाथ एक भी शिकार नहीं लगता। यद्यपि उस शिकारी के द्वारा किसी जीव को कोई भी कष्ट नहीं पहुँचा, परन्तु अपनी शिकार करने की भावनाओं और तदनुसार हीन आचरण करने के कारण वह हिंसक ही माना जायेगा।

दूसरी ओर एक किसान खेत में हल चला रहा है। उसके हल के नीचे आकर तथा उसके पैरों से कुचल कर बहुत से कीड़े-मकोड़े मर रहे हैं, परन्तु फिर भी वह किसान हिंसक नहीं माना जाता, क्योंकि उसका अभिप्राय किसी भी जीव की हत्या करने का नहीं है, अपितु अनाज उगाना ही है। इन जीवों की हत्या से उसका कोई प्रयोजन भी सिद्ध नहीं होता। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह किसान बिल्कुल अहिंसक है तथा उसको हिंसा का दोष नहीं लगेगा। उसे हिंसा का दोष अवश्य लगेगा, परन्तु यह उसकी भावनाओं और उसके काम करने के ढंग के अनुसार ही लगेगा। जमीन पर चलते हुए कीड़ों-मकोड़ों को बचाने के लिये वह जितनी अधिक सावधानी बरतेगा, वह हिंसा का उतना ही कम दोषी होगा।

## एक सूत्र

हिंसा से बचने के लिये भारतीय मनीषियों ने एक सूत्र और भी दिया है।

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।"

'दूसरे के द्वारा किया हुआ जो भी कार्य और व्यवहार आप अपने लिए अप्रिय समझते हैं, वह कार्य व व्यवहार आप दूसरों के प्रति भी नहीं करें।'

यदि आप चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति आपको शारीरिक व मानसिक कष्ट न दे, आपको कटु वचन न बोले, तो आप स्वयं भी दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार न करें।

यदि आप चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति आपके साथ धोखा, बेईमानी और विश्वासघात न करे तो आप भी किसी के साथ ऐसा व्यवहार न करें।

यदि आप यह चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति आपको मिलावटी व नकली वस्तु न दे, आपको कम तौल कर व कम नाप कर न दे, आपसे अनुचित लाभ न ले तो आप भी किसी के साथ ऐसा व्यवहार न करें।

यदि कोई व्यक्ति आपकी बहिन, बेटी की बेइज़्ज़ती और बेहुरमती करता है तो आपको बुरा लगता है तो आपको भी चाहिए कि दूसरों की बहिन-बेटियों को समुचित सम्मान दें।

दूसरे के प्रति व्यवहार करते समय यदि हम अपने व्यवहार को इस कसौटी पर कस लें तो हम बहुत-सी अनावश्यक हिंसा से बच जायेंगे और इस संसार से बहुत सी बुराइयां स्वयमेव ही दूर हो जायेंगी।

## विभिन्न भावनाओं के अनुसार विभिन्न फल

हम पहले भी कह चुके हैं कि हिंसा व अहिंसा का हमारे मन की भावनाओं से बहुत गहरा सम्बन्ध है। वास्तविकता तो यह है कि हमें कोई भी कार्य करना हो, पहले हमारे मन में वह कार्य करने की भावना उत्पन्न होगी, उसके पश्चात् ही हम उस भावना के अनुसार कार्य करेंगे। विभिन्न कर्त्ताओं की विभिन्न भावनाएं होने के कारण एक ही प्रकार के कार्य का भिन्न-भिन्न कर्त्ताओं को भिन्न-भिन्न फल मिलता है। नीचे दिये हुए उदाहरणों से यह तथ्य स्पष्ट हो जायेगा।

(१) दो व्यक्ति मिल कर हिंसा का कोई कार्य कर रहे हैं। उनमें से एक व्यक्ति तीव्र इच्छा से वह कार्य कर रहा है और दूसरा व्यक्ति अनिच्छा से उस कार्य में सहायता कर रहा है, तो दूसरा व्यक्ति भी हिंसा के दोष से बच नहीं सकता। इतना अवश्य है कि पहले व्यक्ति की अपेक्षा दूसरा कम दोषी होगा।

(२) एक वधिक एक पशु की हत्या कर रहा है। कुछ दर्शक वहां पर खड़े हुए उसको प्रोत्साहन दे रहे हैं। यद्यपि यहां पर हिंसा करने वाला एक ही व्यक्ति है, परन्तु प्रोत्साहन देने के कारण उन दर्शकों को भी अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार हिंसा का दोष लगेगा।

(३) एक राजा अपनी सेना को दूसरे देश पर आक्रमण के लिए भेजता है, आक्रमण की सारी योजना भी वह स्वयं ही बनाता है। यद्यपि ऊपरी तौर पर राजा ने हिंसा का कोई कार्य नहीं किया और सारा रक्तपात सेना द्वारा ही किया गया, फिर भी राजा उस हिंसा में सबसे अधिक

भागी है, क्योंकि सारा रक्तपात उसी की आज्ञा पर ही हुआ है। सैनिकों को भी अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार हिंसा का दोष लगेगा।

यहां पर सैनिकों की भावनाओं का स्पष्टीकरण करना उचित रहेगा।

(अ) कुछ सैनिक तो यह सोचते होंगे कि बहुत समय के पश्चात् यह युद्ध का अवसर आया है। हम विपक्ष के सैनिकों को चुन-चुन कर मारेंगे, वहाँ के नागरिकों का धन लूटेंगे और उनकी सुन्दर महिलाओं का अपहरण करके ले जायेंगे और उनको अपने घरों में रखेंगे।

(ब) कुछ सैनिक यह सोचते होंगे कि व्यर्थ में रक्तपात करने से क्या लाभ? विपक्ष के जो सैनिक हमारा सामना करेंगे हम केवल उन्हीं से युद्ध करेंगे।

(स) कुछ सैनिक यह सोचते होंगे कि हम तो अपने राजा के सेवक हैं, जैसी राजा ने आज्ञा दी है वैसा ही हमें करना पड़ रहा है, वरना विपक्ष के सैनिकों से हमारी कोई शत्रुता तो है नहीं।

इस प्रकार प्रत्येक सैनिक की भिन्न-भिन्न भावनाएँ होंगी और उनकी अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार ही उनको हिंसा का दोष लगेगा।

(४) एक व्यक्ति के शरीर पर एक चींटी चढ़ जाती है और वह उसको काट भी लेती है। उस व्यक्ति की प्रतिक्रिया निम्नलिखित तीन प्रकार से हो सकती है।

(अ) वह व्यक्ति बिना विशेष ध्यान दिये उस स्थान को, जहां पर चींटी चल रही है, हाथ से मल देता है। इस प्रकार हाथ से मलने पर वह चींटी मर भी सकती है और बच भी सकती है।

(ब) वह व्यक्ति उस चींटी को जान-बूझकर मार देता है।

(स) वह व्यक्ति उस चींटी को सावधानीपूर्वक अपने हाथ से उठाकर किसी सुरक्षित स्थान पर छोड़ देता है।

उस व्यक्ति का पहले वाला कार्य हिंसा का है, क्योंकि वह सावधानीपूर्वक नहीं किया गया। दूसरे प्रकार का कार्य घोर हिंसा का है, क्योंकि उस व्यक्ति ने जान-बूझकर उस चींटी को मारा है। उसका तीसरे प्रकार का कार्य अहिंसा का है, क्योंकि उसके मन में चींटी की रक्षा के भाव हैं। यह सम्भव है कि हाथ से उठाते समय उस चींटी को कुछ कष्ट पहुंच जाये या वह मर ही जाये, परन्तु फिर भी अपने दयायुक्त भावों के कारण वह व्यक्ति हिंसा का दोषी नहीं है।

(५) हमसे असावधानी में ही कोई चिपकने वाली वस्तु बिना ढके ही रह जाती है। बिना ढकी होने के कारण उसमें कई मच्छर व मक्खियां गिर कर मर जाते हैं।

दूसरी अवस्था में हम मच्छर व मक्खियों को मारने के लिये उनको मारने वाला चिपकने वाला पदार्थ जान-बूझकर रख देते हैं। उस पर भी कुछ मच्छर व मक्खी आदि चिपक कर मर जाते हैं।

इन दोनों अवस्थाओं में लगभग एक-सी ही जीव हिंसा होती है। परन्तु हमारा पहले वाला कार्य केवल असावधानीवश हुआ (क्योंकि हमारा अभिप्राय मच्छर व मक्खियों की हत्या करने का नहीं था) इसलिए इस हिंसा का दोष हमको लगेगा अवश्य, परन्तु कम लगेगा। लेकिन दूसरी अवस्था में हमें बहुत अधिक दोष लगेगा, क्योंकि हमने मच्छर व मक्खियों को मारने के अभिप्राय से ही वह पदार्थ रखा था।

यहाँ यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि पहली अवस्था में, जबकि हमारी असावधानी से उस पदार्थ में गिर कर मच्छर और मक्खी मर जाते हैं, यदि हमारे मन में जरा-सा भी यह विचार आया कि चलो अच्छा हुआ ये मच्छर व मक्खी अपने आप ही मर गये, हमने तो जान-बूझकर इनको मारा नहीं है, तो हम हिंसा के दोषी अवश्य हो जायेंगे। अतः हमारे मन में भी यह भावना नहीं आनी चाहिए कि कोई जीव अपने आप ही मर जाये, या कोई अन्य व्यक्ति उस जीव की हत्या कर दे, या अन्य किसी भी प्रकार से उसे कष्ट तथा हानि पहुँचा दे। ऐसे विचार मन में आते ही, कुछ न करते हुए भी, हम हिंसा के दोषी हो जाते हैं।

## एक शंका

यहां पर एक शंका उठती है। एक बधिक नित्य प्रति पशुओं का बध करता है। एक मछियारा नित्य प्रति मछलियां पकड़ता है। एक शिकारी नित्य प्रति शिकार के द्वारा पशु-पक्षियों की हत्या करता है। इन व्यक्तियों के लिए ये नित्य के साधारण कार्य हैं। इनको इस बात का विचार भी नहीं आता कि वे इन जीवों की हत्या कर रहे हैं या इनके इन कार्यों से इन जीवों को तीव्र कष्ट हो रहा है। ऐसी परिस्थिति में क्या वे व्यक्ति हिंसक कहलायेंगे ?

यह ठीक है कि ये व्यक्ति साधारण रूप से यह कार्य कर रहे हैं। परन्तु साधारण रूप से यह हत्याकाण्ड करने से क्या उन पशु-पक्षियों, मछलियों आदि जीवों को कष्ट नहीं होता ? क्या ऐसे व्यक्ति यह नहीं जानते कि वे इन जीवों का जीवन समाप्त कर रहे हैं ? वास्तव में नित्य प्रति

यही कर्म करते रहने से इन व्यक्तियों के संस्कार बहुत दृढ़ हो जाते हैं और वे इन जीवों के कष्टों के प्रति बिलकुल विवेकशून्य व असावधान हो जाते हैं। परन्तु अविवेक व असावधानी पूर्वक जो भी कार्य किया जाता है, वह हिंसा के अन्तर्गत ही आता है चाहे उससे हिंसा हुई हो या न हुई हो। किन्तु यहां पर तो प्रत्यक्ष ही हिंसा हो रही है तो ये व्यक्ति हिंसक क्यों न कहलायेंगे ? जो व्यक्ति नित्य प्रति शराब पीते हैं, जो व्यक्ति नित्य प्रति जुआ खेलते हैं, जो व्यक्ति नित्य प्रति चोरी करते हैं, क्या वे अपराधी नहीं होते ? क्या वे क़ानून की दृष्टि में दण्डनीय नहीं होते ?

बिलकुल यही बात उन व्यक्तियों के सम्बन्ध में है, जो खाद्य पदार्थों में मिलावट करते हैं, नकली दवाइयाँ बनाते हैं, बढ़िया वस्तु के स्थान पर घटिया वस्तु देते हैं तथा अन्य ऐसे ही कार्य करते हैं जिनसे प्रत्यक्ष में हिंसा होती नहीं दिखती। ये व्यक्ति जान-बूझकर कोई हिंसा का कार्य करना भी नहीं चाहते। ये तो केवल आर्थिक लाभ के लिए ऐसा करते हैं।

यह ठीक है कि इन व्यक्तियों के भाव हिंसा करने के नहीं हैं और न ही प्रत्यक्ष रूप से ये कोई हिंसा करते हैं। परन्तु जो अनैतिक कार्य ये कर रहे हैं उनका परिणाम क्या होगा ? ऐसे कार्यों के फलस्वरूप दूसरों को कष्ट होता है, उनका स्वास्थ्य खराब होता है और कभी-कभी इनके सेवन करने वालों की मृत्यु भी हो जाती है। घटिया वस्तुएं जब अपेक्षित कार्य नहीं कर पातीं तब दुर्घटनाएं हो जाती हैं, जिनके फलस्वरूप जन व धन की अपार क्षति होती है। ऐसी अवस्था में ऐसे अविवेक पूर्ण और अनैतिक कार्य करने वाले हिंसा के दोषी क्यों नहीं होंगे ?

# अहिंसा का क्षेत्र

प्राचीन काल से ही सामाजिक, राष्ट्रीय व विश्व शांति का मूल आधार अहिंसा ही रही है। आज के भौतिक युग में जब अनेक प्रकार के घातक अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार हो गया है तब अहिंसा का महत्त्व और भी बढ़ गया है। आज संसार के प्रायः सभी राष्ट्रों के नेता यही बात कहते हैं कि हमारी आपस की प्रत्येक समस्या का समाधान शांतिपूर्वक विचार विनिमय से हो न कि युद्ध से; और इस प्रकार वे अहिंसा की आवश्यकता को स्वीकार कर रहे हैं। परन्तु अहिंसा के क्षेत्र के सम्बन्ध में सबके विचार भिन्न-भिन्न हैं। कुछ व्यक्ति अहिंसा का क्षेत्र केवल मनुष्य जाति तक ही सीमित मानते हैं। वे मनुष्य के अतिरिक्त अन्य सब पशु-पक्षियों पर मनमाना अत्याचार करते हैं। ऐसे व्यक्तियों की धारणा है कि संसार में जो भी वस्तुएं हैं चाहे वे जानदार हैं या बेजान, वे सब मनुष्य के उपयोग और मनोरंजन के लिए ही हैं। अहिंसा की रट लगाते हुए भी वे मांस भक्षण करते हैं, पशु-पक्षियों की खालों के और रेशम के वस्त्र धारण करते हैं और मनोरंजन के लिए शिकार खेलते हैं।

कुछ व्यक्ति अहिंसा का क्षेत्र केवल अपनी जाति व अपने राष्ट्र तक ही सीमित समझते हैं। दूसरे देश वालों की हत्या करने व दूसरे देशों को नष्ट करने में वे कोई बुराई नहीं समझते।

कुछ देशों के शासक अहिंसक होने का दम भरते हैं, परंतु वे मांसाहार को बढ़ावा देते हैं। क़साईखाने खोलने के लिए करोड़ों रुपये व्यय करते हैं। भोजन के लिए मुर्गियों,

अण्डों व मछलियों का उत्पादन बढ़ाते हैं। शराब की बिक्री के द्वारा अपनी आय बढ़ाते हैं। क्या वे वास्तव में अहिंसक हैं? सच्चा अहिंसक तो जान-बूझकर एक सूक्ष्म जीव को भी कष्ट नहीं देता। यदि देश में अन्न की कमी है तो और अधिक भूमि में खेती का प्रबन्ध करना चाहिए। सिंचाई की सुविधाएँ बढ़ाई जानी चाहिएं। बाढ़ों से करोड़ों रुपये की फ़सल नष्ट हो जाती है, इसलिए बाढ़ों की रोक-थाम का और उस पानी के उपयोग का प्रबन्ध करना चाहिए। केवल मांसाहार को बढ़ावा देना ही अन्न की कमी का विकल्प नहीं है।

यदि हम ध्यान पूर्वक पशु-पक्षियों व छोटे से छोटे कीट पतंगों का अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि उनमें भी मनुष्य के समान ही जीवन है, शक्ति है और चेतना है। उनमें भी जानने की शक्ति है और वे भी हमारे ही समान सुख व दुःख का अनुभव करते हैं। वे भी सुखपूर्वक जीना चाहते हैं और दुःख के कारणों से यथाशक्ति बचते हैं। यह अवश्य है कि उनमें मनुष्यों के बराबर ज्ञान व विवेक नहीं है और वे मनुष्य की तरह अपने सुख-दुःख को व्यक्त नहीं कर सकते। मनुष्यों व पशुओं की शारीरिक बनावट में विशेष अन्तर न होने के कारण, वैज्ञानिक जितने परीक्षण करते हैं वे पहले पशुओं, यथा—चूहों, खरगोशों, कुत्तों, बन्दरों आदि पर ही करते हैं। जब इन पर परीक्षण सफल हो जाते हैं तब वे मनुष्यों पर उनका प्रयोग करते हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्र बसु ने वनस्पति-जगत पर अपने परीक्षण किये थे और यह सिद्ध किया था कि वनस्पतियों में भी चेतना होती है; जैसे कि किसी विशेष प्रकार की ध्वनि करने से पेड़-पौधे जल्दी बढ़ते हैं; इसके विपरीत

उनको अप्रिय लगने वाली ध्वनि करने से वे मुरझा भी जाते हैं। तात्पर्य यही है कि मनुष्यों में और इन पशु-पक्षियों व वनस्पतियों में समान चेतना होते हुए भी यही अन्तर है कि इन्द्रियों की शक्ति की अपेक्षा वे मनुष्य से निर्बल हैं और वे मनुष्य के समान अपने सुख-दुःख को व्यक्त नहीं कर सकते। इसलिए पशु-पक्षियों व वनस्पति को अहिंसा के क्षेत्र से दूर रखना हमारे भ्रमपूर्ण दृष्टिकोण व निजी स्वार्थ-वृत्ति का ही परिचायक है। वास्तविकता तो यह है कि इस संसार में जितने भी चेतन पदार्थ हैं चाहे वह वनस्पति हो चाहे सूक्ष्म कीट-पतंग, चाहे पशु-पक्षी (मनुष्यों की तो बात ही क्या है) सभी हमारे अहिंसक व्यवहार के अधिकारी हैं।

## हिंसा के पक्ष में कुछ तर्क व उनका समाधान

(१) कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि समस्त संसार में असंख्य स्थूल जीवों के अतिरिक्त असंख्यात सूक्ष्म जीव भरे हुए हैं। हमारे दैनिक जीवन में इनका घात होता ही रहता है। इसलिए पूर्ण अहिंसा का पालन करना असम्भव है; और जब अहिंसा का पालन करना असम्भव है तो अहिंसा पर इतना बल क्यों दिया जाये ?

यह ठीक है कि किसी भी व्यक्ति द्वारा पूर्ण अहिंसा का पालन करना असम्भव है, परन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं कि इसीलिए अनावश्यक हिंसा को भी प्रोत्साहन दिया जाये। हमारा कर्तव्य तो यह है कि हम जो भी कार्य करें बहुत सावधानी पूर्वक करें और इस बात का सदैव ध्यान रखें कि हमारे किसी भी कार्य से किसी भी जीव को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचे। हमारे हृदय जीव-दया की

भावना से परिपूर्ण हों और हम यथा सम्भव अनावश्यक दौड़-धूप से बचते रहें। यदि हम इस प्रकार का व्यवहार करेंगे तो हम बहुत सी अनावश्यक हिंसा से बच सकेंगे।

जैन शास्त्रों के अनुसार प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने जीविकोपार्जन के लिए मनुष्यों को असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य आदि की शिक्षा दी थी। भगवान ऋषभदेव महान् ज्ञानी थे। वे जानते थे कि शस्त्रों का प्रयोग करने से व कृषि, उद्योग आदि से हिंसा हो जाना अनिवार्य है। प्रश्न यह है कि फिर भी उन्होंने ऐसे हिंसक कार्यों की शिक्षा क्यों दी ? इसका उत्तर यही है कि उन्होंने तत्कालीन समय की माँग को समझा था। उन्होंने शस्त्रों का प्रयोग दूसरों को कष्ट देने के लिए नहीं, अपितु अपनी व अपने आश्रितों की रक्षा के लिए बतलाया था। कृषि की शिक्षा उन्होंने इसलिए दी थी कि जिससे मनुष्य अन्न का उत्पादन करके अपना पेट भर सकें। भगवान ऋषभदेव का उद्देश्य कृषि के द्वारा अनाज उत्पन्न करना था; न कि जीवों की हिंसा करना। उन्होंने यही शिक्षा दी थी कि जो भी कार्य करो बहुत सावधानी पूर्वक और दया की भावना से करो।

(२) कुछ व्यक्ति यह प्रश्न करते हैं कि यदि हम अहिंसा का पालन करेंगे तो हम आक्रमणकारी का सामना कैसे करेंगे ? अपराधी को दण्ड कैसे देंगे ? क्योंकि ऐसा करने में हिंसा हो जाना अवश्यम्भावी है।

इसका उत्तर हम पहले भी दे चुके हैं। जो व्यक्ति गृहत्यागी साधु हैं, उनको तो किसी प्रकार का भी प्रतिकार करना ही नहीं है, चाहे उनको कोई कितना ही कष्ट दे। परन्तु जो व्यक्ति गृहस्थाश्रम का पालन कर रहे हैं उनका तो सर्वप्रथम कर्तव्य है कि वे आक्रमणकारी का यथाशक्ति

प्रतिरोध करें। यदि आक्रमणकारी का प्रतिरोध नहीं किया जायेगा तो विदेशियों द्वारा उनका देश पददलित किया जायेगा। आक्रमणकारी का पूरी शक्ति से विरोध न करके अहिंसा की रट लगाना निम्न श्रेणी की कायरता है और कायरता स्वयं ही एक महापाप है। किसी पर अत्याचार करना हिंसा है, पाप है; परन्तु बिना विरोध किये किसी का अत्याचार सहना तथा अत्याचारी के आगे आत्मसमर्पण कर देना महापाप है। क्योंकि ऐसा करने से अत्याचारी का साहस बढ़ता है और वह और भी अधिक अत्याचार करने लगता है। इससे देश तथा समाज की मर्यादा और व्यवस्था ही भंग नहीं होती, वरन् महान क्षति भी होती है।

हमें आक्रमणकारी का हर हालत में विरोध करना है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। यदि हममें इतना आत्मबल है कि हम शस्त्रों के बिना भी उसके सामने खड़े रह सकते हैं और उसकी नैतिकता को जगा सकते हैं तो इससे अधिक अच्छा दूसरा उपाय नहीं है। परन्तु यदि हममें इतना आत्मबल नहीं है या आक्रमणकारी में नैतिकता की कोई भावना ही शेष नहीं है तो हमको शस्त्रों के द्वारा ही उसका प्रतिकार करना होगा। लेकिन हमारे हृदय में उसके प्रति किसी प्रकार की कटुता व अन्यथा कष्ट पहुंचाने की भावना नहीं आनी चाहिए। हमारा लक्ष्य तो कम-से-कम बलप्रयोग द्वारा अपनी सुरक्षा करना होना चाहिए। अपनी सुरक्षा करते हुए उसको कोई हानि होती हो या कष्ट पहुंचता हो तो इसमें हमारा कोई दोष नहीं है।

यहां पर एक प्रश्न यह उठ सकता है कि यदि आक्रमणकारी हमसे बहुत अधिक बलवान है और हम यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि हम उसका कुछ भी नहीं बिगाड़

सकते, अपितु उसका सामना करने पर अपनी ही हानि कर लेंगे तो ऐसी दशा में क्या किया जाये,?

इसका उत्तर यही है कि यदि सिद्धान्ततः आपका विरोध उचित है तो आपको हर हालत में आक्रमणकारी का विरोध करना ही है, चाहे आपकी कितनी ही हानि होती हो। यदि आप अपने को निर्बल मानकर उसका प्रतिरोध नहीं करेंगे तो आप अहिंसक नहीं कायर होंगे। वास्तविक अहिंसक तो वह है जो अपने में अपराधी को अथवा आततायी को दण्ड देने की पूरी क्षमता होते हुए भी उसको क्षमा कर देता है। इसके विपरीत निर्बल की अहिंसा व क्षमा लाचारी है, कायरता है, अहिंसा तो कभी भी नहीं है।

इसी प्रकार अपराधी को भी दण्ड देना चाहिये। किन्तु दण्ड देते समय हमारी भावना उससे बदला लेने की नहीं होनी चाहिये। हमारी भावना तो उसकी अपराधवृत्ति को दूर करने की होनी चाहिए। हमको उसके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिये, जिससे कि उसके हृदय में किसी प्रकार की कटुता उत्पन्न न हो, वह अपने अपराध पर स्वयं ही लज्जित हो और भविष्य में फिर अपराध न करे। सत्य तो यह है कि यदि अपराधी को दण्ड नहीं मिलता तो उसकी अपराध-वृत्ति बढ़ती जाती है, जिसके कारण सारे समाज को कष्ट उठाना पड़ता है।

इस सम्बन्ध में एक प्रश्न यह भी उठता है कि यदि कोई दुराचारी किसी महिला से दुराचार करने का प्रयत्न करे तो ऐसे समय में वह महिला क्या करे?

इस प्रश्न का समाधान भी ऊपर आ चुका है। उस महिला को किसी भी भय, धमकी अथवा शारीरिक कष्ट

से घबराकर आत्मसमर्पण नहीं करना चाहिये। उस महिला को दुराचारी का यथाशक्ति हर प्रकार से विरोध करना चाहिये। हाथों से, नाखूनों से, दांतों से, चाकू से, जैसे भी सम्भव हो उसका विरोध करे। बहुधा दुराचारी व्यक्ति किसी प्रकार का प्रलोभन देकर, शारीरिक कष्ट का भय दिखलाकर, परिवार व समाज में बदनामी का भय दिखलाकर, उस महिला के पति व सन्तान आदि की हत्या कर देने का भय दिखलाकर, महिलाओं से आत्मसमर्पण करा लेते हैं। परन्तु इस प्रकार आत्मसमर्पण करने से उस महिला का तो सर्वनाश होता ही है, दुराचारियों का साहस भी बढ़ता है और वे और भी अधिक दुराचार करते हैं। यदि दुराचारी को यह पता चल जाये कि उसकी धमकियों का कुछ भी असर होने वाला नहीं है, और यदि वह दुराचार करने का प्रयत्न करेगा तो उसे भी कष्ट भोगना पड़ सकता है तो वह दुराचार से दूर ही रहेगा और दुराचार का प्रयत्न करने से पहले चार बार सोचेगा।

यहां पर यदि कोई व्यक्ति यह तर्क करने लगे कि धर्म की मान्यता तो यह है कि जो कोई व्यक्ति हमको कष्ट पहुंचाता है, वह हमारे अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए पापों के फलस्वरूप ही पहुंचाता है, इसलिये जब हमको हमारे पापों का ही दण्ड मिल रहा हो तो वह कष्ट हमें समतापूर्वक सह लेना चाहिये। हम उसका प्रतिकार क्यों करें ?

यह ठीक है कि हमको जो भी कष्ट मिलता है वह हमारे अपने ही द्वारा पूर्व में किए हुए पापों के फलस्वरूप ही मिलता है और इसीलिए गृहत्यागी साधु उस व्यक्ति का न तो प्रतिकार ही करते हैं, न उसके प्रति अपने मन में कोई दुर्भावना ही लाते हैं। वह उस कष्ट को समतापूर्वक

सह लेते हैं। परन्तु गृहस्थों से हम इस प्रकार के व्यवहार की आशा नहीं कर सकते। जो व्यक्ति हम पर अत्याचार कर रहा है या हमें कष्ट पहुंचा रहा है उसका अभिप्राय एक न्यायाधीश के समान हमको दंड देने का नहीं होता, वह तो अपनी स्वार्थपूर्ण इच्छाएं पूरी करने के लिए हम पर, हमारे परिवार पर, हमारे आश्रितों पर, हमारे समाज पर तथा हमारे देश पर आक्रमण करता है और हमारी महिलाओं की बेइज़्ज़ती करता है। यदि उसको ऐसा करने से रोका न गया और वह अपने कुकृत्यों में सफल हो गया तो उसका दुःसाहस और भी बढ़ जायेगा और फिर वह केवल हमको, व हमारे परिवार को ही नहीं वरन हमारे धर्म, हमारी संस्कृति, हमारे समाज और हमारे देश को भी नष्ट कर देगा। हमको तो उसका विरोध करना ही चाहिये। हां, हमारी सफलता और असफलता हमारे द्वारा पूर्व में किये हुए कर्मों और वर्तमान में किये हुए हमारे प्रयत्नों, दोनों पर निर्भर करती है।

कुछ व्यक्ति यह आक्षेप करते हैं कि अहिंसा व्यक्ति को कायर बनाती है। परन्तु यह आरोप भी निराधार है। ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसा धर्म में कायरता को कोई स्थान नहीं है। अहिंसा अन्याय व अत्याचार करने से रोकती है, किन्तु यह कभी नहीं कहती कि तुम किसी अन्य का अत्याचार सहन करो। एक निडर व्यक्ति ही सच्ची अहिंसा का पालन कर सकता है और जहां निडरता है वहां कायरता को कोई स्थान नहीं होता। जो व्यक्ति अपने विपक्षी को सामने देखकर उसका सामना करने के बजाय वहां से हट जाता है, चाहे वह मुंह से अहिंसा की रट लगाता रहे, वह अहिंसक नहीं कायर है।

एक सच्चा अहिंसक कर्म क्षेत्र से कभी मुंह नहीं मोड़ता, वह तो विपक्षी का सामना ही करेगा, चाहे वह आत्मबल से करे और चाहे शारीरिक व शस्त्रबल से; ऐसा करने में चाहे उसको कितनी ही हानि व शारीरिक कष्ट क्यों न उठाना पड़े। इसीलिए कहा जाता है कि अहिंसा कायरों का नहीं, वीरों का धर्म है।

(३) कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि शेर, चीते, भेड़िये, सांप, बिच्छू, ततैया आदि जीव मनुष्य को कष्ट देते हैं, इसलिये ऐसे जीवों को मारने में कोई बुराई नहीं है।

परन्तु इस तर्क का अनुमोदन नहीं किया जा सकता। तथ्य तो यह है कि सभी जीव मनुष्य से डरते हैं। वे उसी दशा में मनुष्य पर आक्रमण करते हैं जब उनको यह भय होता है कि यह मनुष्य हमारा अनिष्ट करेगा अथवा उनको तीव्र भूख लग रही हो; अन्यथा वे जीव तो मनुष्य को देख-कर उससे छिपने का ही प्रयत्न करते हैं। सांप, बिच्छू, ततैया आदि जीव भी तभी काटते हैं जब उनको छेड़ा जाता है या उनके ऊपर पैर पड़ जाता है। यदि हम ऐसे जीवों को यह बहाना बनाकर मारने लगें कि वे हिंसक हैं तो हम उनसे भी बड़े हिंसक होंगे। हमारा न्याय कौन करेगा? वे जीव तो केवल लाचारी में ही मनुष्य पर आक्रमण करते हैं, परन्तु मनुष्य तो अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए, अपने शरीर को सजाने के लिए और अपने मनोरंजन के लिए मूक प्राणियों की सामूहिक हत्या करता रहता है। वे पशु-पक्षी तो केवल दूसरी जाति के जीवों की ही हत्या करते हैं और वह भी अपने प्रकृतिप्रदत्त स्वभाव के कारण; परन्तु मनुष्य तो अपनी तृष्णा और स्वार्थ के वश मनुष्यों—अपने बन्धुओं—की हत्या करने से भी नहीं हिचकिचाता।

एक वात और है, ये पशु-पक्षी तो दूसरों पर आक्रमण करने के लिए केवल अपने शारीरिक अंगों का ही प्रयोग करते हैं, जो इनकी अपनी सुरक्षा के लिए इनको प्रकृति की देन हैं। परन्तु मनुष्य ने तो सामूहिक हत्या के लिये एक से एक वढ़ चढ़ कर घातक व मारक अस्त्र-शस्त्र वना लिये हैं, जिनसे वह क्षण भर में ही सैंकड़ों मील के क्षेत्र-फल के प्रत्येक जीवित प्राणी की हत्या कर सकता है। वैज्ञानिकों ने जो उपकरण मनुष्यों की सेवा व सुरक्षा के लिए वनाये थे, उन उपकरणों का प्रयोग भी मनुष्यों की ही हत्या करने के लिए किया जा रहा है। फिर वतलाइये वड़ा हिंसक कौन हुआ ?

(४) कुछ व्यक्तियों की यह मान्यता है कि यदि कोई जीव भयंकर पीड़ा से छटपटा रहा हो तो उसका वध कर देना चाहिए, जिससे कि उसकी पीड़ा का अन्त हो जाये।

परन्तु यह मान्यता ठीक नहीं है। धार्मिक दृष्टि तो यह कहती है कि किसी भी जीव को जो कोई भी कष्ट मिल रहा है वह उसके अपने द्वारा पूर्व में किये हुए पापों के फलस्वरूप ही मिल रहा है। यहाँ पर मृत्यु हो जाने से उस जीव के पाप नष्ट नहीं हो जाते। अपने पापों का फल तो उसको भोगना ही पड़ेगा, इसलिए इस योनि में मृत्यु हो जाने से उसके कष्ट समाप्त नहीं होंगे। हमारा कर्तव्य तो यह है कि कष्ट पा रहे जीवों की सेवा-सुश्रुषा करके उनको सुख व शान्ति पहुँचायें। हमारे प्रयत्नों से उन्हें सुख-शान्ति मिलती है या नहीं मिलती—यह हमारे वश में नहीं है। यदि हमारा कोई सम्वन्धी या अन्य कोई मनुष्य इस प्रकार पीड़ित हो तो क्या हम उसके साथ भी ऐसा ही व्यवहार करेंगे ?

(५) कुछ व्यक्ति यह तर्क करते हैं कि संसार में जीवन के लिए संघर्ष चलता रहता है। बाज की श्रेणी के बड़े पक्षी अपने से छोटे पक्षियों को खाकर जीवित रहते हैं। छोटे पक्षी कीड़े-मकोड़ों को खाकर जीवित रहते हैं। शेर, चीते, भेड़िये आदि पशु हिरण, भेड़, बकरी, इत्यादि पशुओं को खाकर जीवित रहते हैं। भेड़, बकरी, गाय आदि पशु घास व फल-फूल (इनमें भी जीवन होता है) आदि खाकर जीवित रहते हैं। बड़ी मछलियां व मगरमच्छ आदि छोटी मछलियों को खाते हैं। छोटी मछलियां छोटे-छोटे कीड़ों व वनस्पतियों को खाती हैं। मनुष्य भी अन्न व फल आदि, जिनमें जीवन होता है, से ही अपना पेट भरता है। इस प्रकार जब सारे संसार में जीवन के लिये हिंसा करनी ही पड़ती है तो फिर मनुष्य को ही अहिंसा का उपदेश देना क्यों आवश्यक है ?

ऊपर जिन पशु-पक्षियों के उदाहरण दिये हैं, वे स्वभाव से ही हिंसक हैं। प्रकृति ने ही उनको इस प्रकार का बनाया है। उनके अंग-प्रत्यंगों की बनावट ही इस प्रकार की है, जिससे कि वह अपने खाद्य पशु-पक्षियों को पकड़ सकें व मार कर खा सकें। उनके दांत और आँतें भी इसी प्रकार की होती हैं जिनसे कि वे कच्चा मांस खा सकें और पचा सकें। इस प्रकार वे अपनी प्रकृति के अनुसार ही अपने से निर्बल प्राणियों को खाकर जीवित रहते हैं। इसके अतिरिक्त वे स्वयं कोई खाद्य पदार्थ उत्पन्न भी नहीं कर सकते। फिर भी हिंसा उनका धर्म नहीं है। यदि हिंसा उनका धर्म होता तो उनको अपने स्वयं के चोट लगने का और वध होने का भय भी नहीं होता। वे अपनी जाति के जीवों और अपने बच्चों को भी मारकर खा जाते। परन्तु ऐसा

कभी नहीं होता। जब भी इन पशु-पक्षियों को चोट लगने का या मरने का भय होता है वे छिप जाते हैं। वे अपने छोटे बच्चों को प्यार करते हैं और उनका पालन करते हैं। यदि कभी अपने बच्चों पर कोई खतरा देखते हैं तो अपनी जान पर खेल कर भी उनकी रक्षा करते हैं। फिर वे हर समय तो हिंसा नहीं करते। जब उनको भूख लगती है, या उन पर कोई आक्रमण करता है तभी वे हिंसा करने को उद्यत होते हैं। इसके विपरीत मनुष्य प्राकृतिक रूप से हिंसक नहीं है। उसके अंग-प्रत्यंग, दांत व आंत हिंसा करने व मांसाहार के उपयुक्त नहीं हैं। मनुष्य में ज्ञान व विवेक है। वह अपने लिये खाद्य उत्पन्न कर सकता है। पशु तो अनादि काल से जिस अवस्था में था उसी अवस्था में है, परन्तु मनुष्य ने उत्तरोत्तर कितनी उन्नति की है। इसलिए मनुष्यों को और पशुओं को एक ही श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

एक बात और है। आप संसार में किसी भी पशु-पक्षी, कीट, पतंग को देखें तो आप यही पायेंगे कि एक जाति के जीव अपना झुण्ड बना कर रहते हैं। कहीं भी किसी एक जाति के जीव को आप अकेले नहीं पायेंगे। एक अकेला जीव कभी जीवित नहीं रह सकता। सभी जीव परस्पर के सहयोग व उपकार से जीवित रहते हैं। और जहां पर जीवित रहने के लिए परस्पर सहयोग व उपकार की आवश्यकता है वहां पर ही अहिंसा होती है। क्या हिंसा का अर्थ परस्पर सहयोग व उपकार है? यदि नहीं तो फिर इन प्राणियों का प्राकृतिक धर्म हिंसा कैसे हुआ?

यही बात मनुष्य के सम्बन्ध में भी है। कोई भी व्यक्ति

अकेले रह कर अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। उसको भी जीवित रहने के लिए परस्पर सहयोग व उपकार की आवश्यकता है। परन्तु एक बात में मनुष्य पशु से भी नीचे गिरा हुआ है। प्रत्येक पशु-पक्षी अपनी जाति के जीवों के साथ सदैव प्रेम भाव रखता है। वह अपनी जाति के जीवों पर बिना विशेष कारण के द्वेष व आक्रमण नहीं करता। परन्तु मनुष्य अपने स्वार्थ के वश प्रायः दूसरे मनुष्य की बुराई ही सोचता है। इसीलिए अनादि काल से संसार में युद्ध होते रहे हैं, जिनमें मनुष्य एक दूसरे का रक्त बहाते रहे हैं।

(६) कुछ व्यक्ति यह तर्क करते हैं कि यदि इन पशु-पक्षियों का वध नहीं किया जायेगा तो इनकी संख्या इतनी बढ़ जायेगी कि मनुष्यों को संसार में रहने के लिए स्थान पाना कठिन हो जायेगा और उनको भोजन के लिए खाद्य पदार्थ मिलने भी दुर्लभ हो जायेंगे। इसलिए मनुष्य जाति की भलाई इसी में है कि इन पशु-पक्षियों का वध किया जाता रहे।

जहां तक इन पशु-पक्षियों की संख्या में बढ़ोतरी का प्रश्न है उससे मनुष्य को भय नहीं करना चाहिए। प्रकृति इनकी संख्या पर स्वयं ही नियन्त्रण रखती है। सर्दी, गर्मी, सूखा, वर्षा आदि प्राकृतिक कारणों से इनकी संख्या सीमित रहती है। इसके अतिरिक्त जितने पशु-पक्षी हैं वे सभी विशेष विशेष ऋतुओं में प्रजनन करते हैं। इस कारण भी इनकी संख्या सीमित रहती है। वास्तव में इन जीवों की संख्या बढ़ जाने का भय निराधार है और उनका वध करने का एक बहाना मात्र है। इसके विपरीत आज कल तो स्वयं मनुष्य ही उनका मांस प्राप्त करने के लिए कृत्रिम

उपायों से उनकी संख्या बढ़ा रहा है। अपने स्वार्थ के लिए पहले तो पशु-पक्षियों की संख्या बढ़ाना और फिर उनका घात करना कहां तक न्यायोचित और मानवीय है ?

समझ में नहीं आता कि इन व्यक्तियों को संसार चलाने की जिम्मेदारी किसने सौंप दी है जिसको पूरा करने के लिए ये इन दीन-हीन मूक पशु-पक्षियों का वध करने पर तुले हुए हैं ? यदि ये व्यक्ति मनुष्य जाति की भलाई ही करना चाहते हैं तो ऐसा करने के और भी बहुत से मार्ग हैं। क्या मनुष्य जाति को रोगों से छुटकारा मिल गया है? क्या अब कोई भी व्यक्ति अभाव के कारण दुखी नहीं है ? क्या अब मनुष्यों ने आपस में युद्ध करना बन्द कर दिया है ? क्या अब मनुष्य आपस में प्यार से रहने लगे हैं ? क्या अब संसार का कोई भी व्यक्ति निरक्षर नहीं रहा है ? मनुष्य के सामने अभी ऐसी अनेकों समस्याएं हैं, जिनका समाधान होना अभी बाकी है। अतः जो सज्जन मनुष्य जाति की भलाई ही करना चाहते हैं वे इन मूक पशुओं की हत्या करने की बजाय अपना समय मनुष्यों के दुःख-दर्द दूर करने में लगायें।

इसी प्रकार कुछ व्यक्ति बूढ़ी गाय, भैंसों और बैलों की हत्या करने की वकालत करते हुए कहते हैं कि इन निकम्मे पशुओं को खिलाने की बजाये इनकी हत्या करके इनका मांस खाना आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभप्रद है।

परन्तु यह दृष्टिकोण ठीक नहीं है। इन पशुओं का भोजन अधिकांश में घास, पात, फलों के छिलके आदि ही होता है, जिससे मनुष्यों के खाद्य पदार्थों में कोई कमी नहीं आती। और फिर वे अपने ऊपर हुए खर्च के लगभग बराबर ही गोबर के रूप में हमें खाद दे देते हैं। अतः इन

पशुओं को पालने में कोई विशेष आर्थिक हानि नहीं होती।

एक बात और भी है। क्या यह हमारी कृतघ्नता नहीं होगी कि जो पशु अपने जीवन भर हमें दूध देते हैं, हमारी फसल के लिये खाद देते हैं, हमारे खेतों में हल चलाते हैं, हमारा बोझा ढोते हैं तथा मरने के पश्चात् भी हमें अपना चमड़ा और हड्डियां आदि देते हैं, उन पशुओं की, बूढ़ा व अशक्त होने पर, हम हत्या कर दें ?

'इन बेकार पशु-पक्षियों का वध करके ही मनुष्य की भलाई की जा सकती है' यह तर्क देकर जो आज इन जीवों की हत्या की जा रही है वही तर्क देकर कल मनुष्यों की भी हत्या करना आरम्भ हो जायेगा। फिर हम अपने बूढ़े व अशक्त माता-पिताओं को भी बेकार समझ कर उनका वध करने लगेंगे। इस स्वार्थवृत्ति का अन्त कहां होगा ?

(७) कुछ व्यक्ति यह तर्क देते हैं कि मनुष्य जाति की उन्नति के लिये युद्ध अनिवार्य हैं। युद्धों में प्रयोग के लिए मनुष्य नित्यप्रति नये-नये अस्त्र-शस्त्र बनाता है और अन्य उपयोगी आविष्कार करता है। यदि युद्ध न हों तो मनुष्य का मस्तिष्क कुण्ठित हो जाये और वह शत्रु को नष्ट करने और अपनी रक्षा करने के लिए नये-नये साधनों का आविष्कार करना छोड़ दे। युद्ध में रक्तपात होता है और उस रक्तपात के लिए अभ्यस्त होने के लिए इन पशु-पक्षियों का वध करते रहना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त वे यह भी तर्क देते हैं कि बिना रक्तपात के हम अपनी, अपने आश्रितों की और अपने देश की रक्षा भी नहीं कर सकते। उनकी मान्यता है कि लड़ाकू व हिंसक जातियां सदैव स्वाधीन रहती हैं और उन्नति भी करती हैं।

परन्तु इन व्यक्तियों के ये विचार ठीक नहीं हैं।

अनादिकाल से ही मनुष्य किसी-न-किसी कारण को लेकर आपस में युद्ध करते आये हैं। इन युद्धों में जन-धन की कितनी हानि होती है, इसकी कोई सीमा नहीं है। वीसवीं शताब्दी के प्रथम अर्द्धशतक में संसार ने दो महायुद्ध देखे हैं। छोटे-मोटे युद्ध तो निरन्तर चलते ही रहते हैं। इन युद्धों में कितनी जन-धन की हानि हुई, इसका लेखा-जोखा लगाना असम्भव है। इतनी हानि और इतनी हिंसा करने के पश्चात् भी इन युद्धरत राष्ट्रों को क्या मिला? क्या इन युद्धों से उन राष्ट्रों की या संसार की कोई समस्या सुलझी? तथ्य तो यह है कि इन युद्धों ने नई-नई समस्याएं पैदा कर दीं। इनके कारण अगणित स्त्रियां विधवा तथा वालक अनाथ हो गये। लाखों व्यक्ति विकलांग हो गये। लाखों परिवार शरणार्थी वन कर, जगह-जगह की ठोकरें खा रहे हैं। विषैली गैसों के कारण सारा वायुमंडल दूषित हो गया है। नये-नये रोग पैदा हो गये हैं। और फिर नैतिकता का जो ह्रास हुआ है वह अलग। इन युद्धों के ऐसे भयानक परिणाम देखकर ही League of Nations और United Nations Organisation का जन्म हुआ, जिससे राष्ट्रों के आपसी झगड़े, युद्ध के माध्यम से नहीं, अपितु आपसी वार्तालाप द्वारा सुलझाये जा सकें। आज भी संसार के नेता पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि युद्ध वन्द हो जाने चाहिएं और शस्त्रों के उत्पादन पर पावन्दी लगनी चाहिए। लेकिन फिर भी एक दूसरे पर अविश्वास के कारण प्रत्येक राष्ट्र अपनी सेना व शस्त्रों पर अपनी क्षमता से अधिक धन व्यय कर रहा है। सामूहिक रूप से मनुष्यों की हत्या करने के लिये नित्य नये-नये घातक शस्त्रों का आविष्कार हो रहा है। अर्थ-शास्त्रियों ने हिसाव

लगाया है कि इन युद्धों के माध्यम से एक व्यक्ति की हत्या करने के लिए जितना धन व्यय होता है, उतने धन से कई व्यक्ति सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह कर सकते हैं। इन युद्धों पर अपरिमित धनराशि व्यय होने के कारण जनसाधारण की उन्नति व सुख-सुविधा के अन्य अत्यावश्यक कार्य सम्पन्न नहीं हो पाते। यदि संसार के समस्त राष्ट्र सद्-भावना से रहें और युद्धों में नष्ट होने वाले धन को जन-साधारण की भलाई के लिए व्यय करें तो कुछ ही दिनों में संसार की कायापलट हो सकती है। दूसरे शब्दों में, हम यह कह सकते हैं कि यदि अहिंसा का सिद्धान्त सर्व-मान्य हो जाये और सब उसी के अनुसार चलें तो यह संसार ही स्वर्ग बन जाये।

जहां तक युद्धों के फलस्वरूप उन्नति का प्रश्न है तो वह उन्नति केवल घातक व मारक अस्त्र-शस्त्रों के बनाने में ही होती है। मनुष्य जाति को सुख-शान्ति पहुँचाने की दिशा में कोई उन्नति नहीं होती। इसके विपरीत वैज्ञा-निकों ने जिन साधनों का आविष्कार मनुष्य मात्र की भलाई के लिए किया था, इन युद्धों में उन साधनों का प्रयोग भी मनुष्य की हत्या करने के लिए ही किया जाता है। इसके अतिरिक्त सभी विद्वान यह मानते हैं कि कला-कौशल व संस्कृति की उन्नति शान्तिकाल में ही होती है, युद्धों से तो वह नष्ट ही होती है।

इसी प्रकार जहां तक हिंसक व लड़ाकू जातियों के उन्नत व स्वाधीन होने की मान्यता है वह भी भ्रामक है। हिंसक व्यक्ति तो क्रूर व निर्दयी होता है, उन्नत व स्वाधीन नहीं। यदि इस तथ्य में सच्चाई होती तो संसार का कोई भी राष्ट्र कभी परतन्त्र नहीं हुआ होता, क्योंकि सैकड़ों

वर्षों से भारत के थोड़े से व्यक्तियों के अतिरिक्त संसार की कोई भी जाति अहिंसक नहीं है।

(८) कुछ व्यक्ति यह आक्षेप करते हैं कि अहिंसा की रट लगाने के कारण ही भारत सैकड़ों वर्षों तक परतन्त्र रहा। अतः देश की स्वाधीनता व सुरक्षा के लिये अहिंसा की रट छोड़नी पड़ेगी।

इन व्यक्तियों का यह आक्षेप निर्मूल और तथ्यों के विपरीत है। यदि हम भारत के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हम पायेंगे कि भारत पूर्ण रूप से अहिंसक कभी भी नहीं रहा। जब विदेशियों ने यहाँ पर आक्रमण किये उस समय यहां पर बहुत से छोटे-छोटे राज्य थे। इन राज्यों के शासक शिकार खेलते थे और मांस खाते थे, फिर इनको अहिंसक कैसे मान लिया जाये? वास्तविकता तो यह है कि वे शासक आपस में वैमनस्य रखते थे, एक-दूसरे से युद्ध करते रहते थे और इस प्रकार अपनी शक्ति नष्ट करते रहते थे। इन भारतीय राजाओं को निर्बल समझ कर और यहां की अतुल धन-सम्पदा से आकर्षित होकर ही इन विदेशियों ने भारत पर बार-बार आक्रमण किये। इन भारतीय राजाओं ने कभी भी संगठित होकर इन विदेशियों का सामना नहीं किया। इसके विपरीत कई बार तो ऐसा भी हुआ कि इन्हीं भारतीय राजाओं ने अपने किसी शत्रु भारतीय राजा पर आक्रमण करने के लिये इन विदेशियों को आमन्त्रित किया। आरम्भ में तो वे विदेशी यहां की धन-सम्पदा लूट-लूटकर ले जाते रहे। परन्तु बाद में जो आक्रमणकारी आये, वे यहीं बस गये और साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से यहां के शासक बन गये। अतः भारत की परतन्त्रता का मुख्य कारण अहिंसा नहीं, अपितु

यहां के राजाओं का आपस का वैमनस्य, एक-दूसरे से विश्वासघात, उनकी निर्बलता, कायरता और विलासिता थी। अहिंसा धर्म कभी यह नहीं कहता कि आक्रमणकारी का सामना न करो और उसके सामने आत्मसमर्पण कर दो। अहिंसा धर्म तो यह कहता है कि किसी पर अत्याचार करना पाप है, परन्तु किसी का अत्याचार सहना महापाप है।

यदि हम भारत के पिछले दो सौ वर्षों के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमको विदित होगा कि जब अंग्रेज भारत में आये थे तब यहां के अधिकांश शासक मुसलमान राजा व नवाब थे। यह सर्वविदित है कि मुसलमान अहिंसा में विश्वास नहीं करते, फिर वे मुसलमान राजा व नवाब परतन्त्र कैसे हुए? उत्तर यही है कि अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति अपनायी और उनकी यह कूटनीति पूर्णतः सफल हुई। इसके अतिरिक्त वे मुसलमान शासक पूरी तरह से विलासी हो गये थे और अपना अधिकतर समय शासन के कार्यों में लगाने के बजाय सुरापान व सुन्दरियों में व्यतीत करने लगे थे। शासन वस्तुतः उन वज़ीरों के हाथ में था, जो स्वयं शासक बनने के लिये षड्यन्त्र करते रहते थे। अंग्रेजों ने ऐसे व्यक्तियों को अपना मुहरा बनाया और कूटनीति से धीरे-धीरे करके सारे भारत का शासन अपने हाथों में ले लिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की परतन्त्रता में अहिंसा का कोई हाथ नहीं था। इसके विपरीत पुराने इतिहासों और विदेशियों की भारत-यात्रा के वर्णनों से हमको विदित होता है कि प्राचीन काल में यहां पर हिंसा नाम मात्र को होती थी। यहां के ... का चरित्र बहुत ऊंचा था, बेईमानी व विश्वास-

घात का कहीं नाम भी न था। लोग अपने घरों में ताले भी नहीं लगाते थे और प्रजा हर प्रकार से सुखी व सम्पन्न थी। यहां का कला-कौशल और संस्कृति आदि अधिकांश में उसी समय की देन है।

भारत का और विशेषकर राजपूताने का इतिहास साक्षी है कि जब भी यहां के निवासियों ने विलासिता और अपने जीवन का मोह त्याग कर आक्रमणकारी का सामना किया तभी उन्होंने आक्रमणकारियों के छक्के छुड़ा दिये और अपने से कई-कई गुनी बड़ी सेना को हराया।

अब से लगभग एक हजार वर्ष पहले भारत में, विशेष-कर गुजरात व दक्षिण में, बहुत से जैन शासक हुए हैं। उन्होंने शताब्दियों तक अपने राज्यों पर सफलतापूर्वक शासन किया और आक्रमणकारियों से अपने प्रदेश को सुरक्षित रक्खा। परन्तु जब उनकी शक्ति बिलकुल ही क्षीण हो गयी या आक्रमणकारी बहुत अधिक शक्तिशाली हुआ तब उन्होंने युद्ध में लड़ते-लड़ते अपने प्राण गंवा दिये, परन्तु विदेशियों के सामने आत्मसमर्पण नहीं किया और न उनकी आधीनता ही स्वीकार की। इसी कारण इन राज-वंशों के नाम भी आज लुप्त प्रायः हो गये हैं।

वर्तमान काल में भी हम देखें तो इसी सत्य के दर्शन होंगे। अमरीका जैसा विशाल, शक्तिशाली और धनवान देश एक छोटे से देश वियतनाम को नहीं झुका सका। क्योंकि वियतनामी अपने प्राणों की परवाह न कर अपने देश के लिये लड़ रहे थे।

इसके साथ-साथ सन् १९४८ में उदय में आये छोटे से यहूदी राज्य इज़राइल का उदाहरण भी हमारे सामने है। लगभग ३५ लाख की जनसंख्या का यह छोटा सा देश

अपनी स्थापना के समय से ही ६ करोड़ की कुल जनसंख्या वाले कई अरब राज्यों का सफलतापूर्वक सामना ही नहीं कर रहा अपितु उसने इन अरब राज्यों के बहुत से क्षेत्र पर अपना अधिकार भी कर रक्खा है। जबकि उसके पास सेना और शस्त्र अरब राज्यों की सम्मिलित सेना और शस्त्रों से बहुत कम हैं। यह सब वहां के निवासियों की देशभक्ति और बलिदान की भावना का ही तो परिणाम है।

इसी प्रकार जबसे भारत स्वतन्त्र हुआ है तबसे इस पर पांच बार आक्रमण हो चुका है। सन् १६६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण किया। भारत उस समय तक चीन को अपना मित्र समझता था और इसीलिए उसकी ओर से निश्चिन्त था। चीन ने इस भ्रम का लाभ उठाया और उस समय भारत को अपमान सहना पड़ा। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान ने भारत पर चार बार आक्रमण किया। हर बार उसके मांसाहारी, हिंसक व क्रूर सैनिकों ने आक्रमण करने में पहल की, परन्तु हर बार पाकिस्तान को भारत की वीर सेना के आगे मुंह की खानी पड़ी। भारत की सेना में मांसाहारी भी हैं और शाकाहारी भी। भारत का कोई भी सैनिक पाकिस्तानी सैनिकों जैसा क्रूर व निर्दयी भी नहीं था, फिर भी भारत के वीरों ने पाकिस्तान को नाकों चने चबवा दिये। क्योंकि भारत के वीरों ने किसी अन्य देश की भूमि हड़पने के लिये आक्रमण नहीं किया था, अपितु वे तो अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जी-जान से लड़ रहे थे। उन्हें अपना देश व उसकी स्वतन्त्रता अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी थी। इन युद्धों में भारतीय वीरों ने जो बलिदान दिये हैं वे स्वर्णाक्षरों में लिखे जायेंगे।

कहने का तात्पर्य यही है कि कोई भी देश, जब तक

कि उस देश के निवासियों में और वहां की सेना में अपने देश पर मर मिटने की भावना है, केवल हिंसा से ही पराधीन नहीं किया जा सकता।

हम विश्व के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें विदित होगा कि भारत के अतिरिक्त संसार का कोई भी ऐसा देश नहीं है जहां पर अहिंसा का सिद्धान्त प्रचलित हो, परन्तु फिर भी समय-समय पर वे देश दूसरे देशों के आधीन रहे। अहिंसा को न मानते हुए भी वे देश क्यों पराधीन हुए ? अहिंसा पर आक्षेप करने वालों के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। उत्तर यही है कि कभी वे आपसी फूट के कारण पराधीन हुए और कभी अपनी विलासिता व कायरता के कारण। उनकी परतन्त्रता में अहिंसा कभी भी कारण नहीं बनी।

(९) कुछ व्यक्ति यह पूछते हैं कि यदि किसी के घर में तथा दुकान में रखे हुए खाद्य पदार्थों में कीड़े पड़ जायें, कागज में दीमक लग जायें, तो ऐसी परिस्थिति में वह व्यक्ति क्या करे ?

इस सम्बन्ध में हम पहले भी कह आये हैं। हमारे प्रयत्न तो यही होने चाहियें कि हम साफ-सुथरा थोड़ा-थोड़ा सामान ही लायें जो थोड़े दिन में ही खत्म हो जाये। इसके साथ-साथ हम उस सामान की पर्याप्त देख-भाल भी रखें, जिससे कि ऐसी परिस्थिति आने की सम्भावना ही न रहे और हम हानि व हिंसा दोनों से बचे रहें। परन्तु फिर भी असावधानीवश अथवा किन्हीं अनिवार्य कारणों से ऐसी परिस्थिति आ भी जाती है, तो हमें उस कागज व खाद्य पदार्थों को मैदान में किसी ऐसी जगह रखवा देना चाहिए, जहां उन कीड़ों के मरने की सम्भावना कम से

कम हो। यदि हम इतनी आर्थिक हानि उठाने को तैयार नहीं हैं, तो उस सामान को इस प्रकार सावधानी पूर्वक साफ करना चाहिये, जिससे कि उन जीवों के मरने की सम्भावना कम से कम हो। उस सामान में से जो जीव निकलें उनको ऐसी सुरक्षित जगह रखवा देना चाहिये, जिससे कि वे किसी के पैरों के नीचे नहीं आ सकें तथा अन्य पशुओं द्वारा न खाये जा सकें।

हम पहले भी कह चुके हैं कि संसार में पूर्ण अहिंसक बन कर रहना असम्भव है। हम तो अपनी ओर से पर्याप्त सावधानी ही रख सकते हैं। सावधानीपूर्वक और दया-भाव से जो कार्य किये जाते हैं उनसे हिंसा का दोष लगता अवश्य है, परन्तु कम लगता है।

वास्तव में तो हम किसी भी जीव को न सुख दे सकते हैं, न दुःख। किसी भी जीव को जो भी सुख व दुःख मिलते हैं वे उसके अपने स्वयं के ही द्वारा पूर्व में किये हुए अच्छे व बुरे कर्मों के फल स्वरूप ही मिलते हैं। हम तो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं। परन्तु हम अपनी अज्ञानता के कारण अपनी भावनाओं के अनुसार ही कर्मों का संचय करते रहते हैं।

एक प्रश्न यह उठता है कि क्या अहिंसा द्वारा विश्व की समस्याओं का समाधान हो सकेगा ?

समस्याओं के समाधान की बात तो जाने दीजिये, मैं तो यह कहता हूं कि जहां अहिंसा का व्यवहार होगा वहां समस्यायें होंगी ही नहीं। यदि वहां पर किसी वस्तु का अभाव भी होगा तो वहां का प्रत्येक व्यक्ति उस अभाव का कष्ट स्वयं सह लेगा, परन्तु अपने कारण किसी अन्य को किसी प्रकार का कष्ट न होने देगा। जहां इस प्रकार की

भावना होगी और उसी के अनुसार व्यक्तियों का आचरण होगा, वहां समस्याओं का अस्तित्व ही कहां होगा ?

हम एक उदाहरण लें। आपको किसी व्यक्ति से रुपये लेने हैं, जो उस पर बहुत दिनों से बाकी हैं। आप क्रोध में भर कर उससे रुपये माँगने जाते हैं। वह व्यक्ति आपके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है और तत्काल ही आपका रुपया चुकाने में अपनी असमर्थता बताता है। उसके इस प्रकार के व्यवहार से क्या आपका क्रोध ठहर सकेगा ? आप उसकी असमर्थता को देखकर यही कहेंगे कि अच्छा कोई बात नहीं, जब हो सके, तब चुका देना। इसके विपरीत यदि वह व्यक्ति अपनी धौंस दिखाकर आपके सामने अनुचित व्यवहार करता तो आप दोनों का झगड़ा हो जाना अवश्यम्भावी था।

हम एक और उदाहरण देते हैं। मान लिया किसी व्यक्ति को अनजाने में ही आपसे ठोकर लग जाती है। वह व्यक्ति क्रोधित होकर कहता है "क्या आपको दिखाई नहीं देता, जो ठोकर मारकर चल रहे हो ?" आप भी क्रोधित होकर कहते हैं—"रास्ते में क्यों बैठे हुए हो ? इस प्रकार रास्ते में बैठोगे तो ठोकर लगेगी ही।" इस प्रकार बात बढ़ते-बढ़ते आप दोनों में झगड़े की नौबत आ जायेगी। इसके विपरीत आपसे ठोकर लगने पर यदि आप उस व्यक्ति से क्षमा माँग लेते तो वह यही कहता "कोई बात नहीं। गलती मेरी ही थी, जो मैं रास्ते में बैठा हुआ था।" इस प्रकार आप दोनों ही अपनी-अपनी गलती मानते और झगड़ा होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

## अहिंसा और जनतन्त्र

आज संसार में जनतन्त्र की बहुत चर्चा है। जनतन्त्र किसी भी देश के अपने नागरिकों के जीवन तथा उनके अधिकारों की सुरक्षा का भरोसा दिलाता है। परन्तु अहिंसा जनतन्त्र से भी बहुत आगे है। जबकि जनतन्त्र केवल अपने देश के ही नागरिकों के जीवन व उनके अधिकारों तक ही सीमित है, अहिंसा समस्त संसार के प्रत्येक प्राणी के जीवन और उसके अधिकारों की सुरक्षा करने के लिये प्रेरित करती है।

## हिंसा अथवा अहिंसा ?

हमको हिंसा और अहिंसा इन दोनों में से एक को 'धर्म' के रूप में चुनना है। धर्म सार्वभौम होता है। ऐसा कभी नहीं होता कि कुछ व्यक्तियों का धर्म हिंसा हो और कुछ का अहिंसा। ऐसी दशा में आप दोनों में से किसका चुनाव करेंगे ?

आप कुछ समय के लिये हिंसा को धर्म मानने वाले संसार की कल्पना करें। ऐसे संसार का नियम होगा "या तो अन्य जीवों की हत्या करो अन्यथा वे तुम्हारी हत्या कर देंगे" (Kill or be Killed)। ऐसी स्थिति में आपको चारों ओर प्रत्येक प्राणी एक-दूसरे को कष्ट पहुंचाता हुआ दिखाई देगा। चारों ओर अविश्वास और भय का वातावरण होगा। प्रत्येक प्राणी को हर समय अपने प्राण बचाने की चिन्ता लग रही होगी। चारों ओर रुदन व चीत्कार तथा रक्त व मांस के दृश्य ही दिखाई दे रहे होंगे।

इसके विपरीत अहिंसा को धर्म मानने वाले संसार में बिल्कुल उलटा ही दृश्य दिखाई देगा। ऐसे संसार का नियम

होगा "स्वयं भी जियो और दूसरों को भी जीने दो" (Live and let live)। इन नियमों को मानने वाले संसार में सब ओर शान्ति, प्रेम, अभय और विश्वास का वातावरण होगा। प्रत्येक व्यक्ति का हृदय करुणा से परिपूर्ण होगा तथा प्रत्येक व्यक्ति को यही ध्यान होगा कि उसके द्वारा किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुंचे। इसलिए वहां पर दुख व कष्ट नाम की कोई वस्तु ही नहीं होगी।

आप स्वयं निर्णय करें कि आपको इन दोनों में से कौन से संसार में रहना प्रिय लगेगा ?

हम आपके सम्मुख एक और तथ्य रखते हैं। संसार के समस्त प्राणी दुःख पाने से बचना और सुख पाना चाहते हैं। सुख उनको तभी मिल सकता है जब कोई भी अन्य प्राणी उनको किसी प्रकार का भी कष्ट न दे अर्थात् प्रत्येक प्राणी अहिंसा का पालन करे।

हम सब जानते हैं कि यदि कोई व्यक्ति आम प्राप्त करना चाहता है तो उसे आम ही बोने पड़ेंगे। नीम बोकर कोई भी व्यक्ति आम प्राप्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार यदि किसान को गेहूं की फसल प्राप्त करनी है तो उसे गेहूं ही बोना पड़ेगा। अर्थात् पहले उसे अपने पास के गेहूं का त्याग करना पड़ेगा। इस त्याग के फलस्वरूप ही उसको कई गुना अधिक गेहूं प्राप्त होगा। हम अधिक क्या कहें, एक जुआरी को भी धन जीतने के लिये, पहले अपने पास के धन को दांव पर लगाना होता है, तभी वह धन जीतने की आशा कर सकता है। इसी प्रकार यदि हमें सुख प्राप्त करना है तो हमें सुख का ही वृक्ष लगाना होगा। पहले हमें अपने वर्तमान सुख का त्याग करना होगा। हमें दूसरे

जीवों की सेवा-सुश्रुषा करनी होगी, उनके प्रति अहिंसक व्यवहार रखना होगा। इस प्रकार अपने वर्तमान सुख के त्याग के फलस्वरूप ही हम भविष्य में उससे भी कई गुना सुख प्राप्त कर सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि अपने पड़ौसी के मकान में आग लगाकर वह अपने मकान में सुखपूर्वक रह सकता है तो यह उसका भ्रम है। पड़ौसी के मकान में लगी आग से उसके मकान को भी हानि पहुंचेगी। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति हिंसक व्यवहार करता है तो उसका सुख प्राप्त करने की आशा करना मृगतृष्णा के समान होगा। अतः निष्कर्ष यही निकला कि यदि हम सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें अपना व्यवहार अहिंसक ही रखना पड़ेगा। अर्थात् अहिंसा ही समस्त सुखों का स्रोत है।

वास्तव में अहिंसक आचरण केवल धर्म ही नहीं है; यह तो जीने का ढंग है, जीने की कला है, जिससे हमें स्वयं को भी सुख मिलता है और दूसरों को भी। अहिंसा परस्पर सहयोग तथा सह-अस्तित्व को जन्म देती है जबकि हिंसा प्रतिस्पर्द्धा और वैमनस्य की जननी है, जिसका परिणाम है युद्ध और सर्वनाश।

# धर्म के नाम पर हिंसा

भगवान् महावीर के समय में धर्म के नाम पर यज्ञों में पशुओं की और कभी-कभी मनुष्यों की भी वलि दी जाती थी। यह सब वेदों के नाम पर और वेदों के अनुसार किया जाता था। इसके समर्थन में कहा जाता था कि यज्ञों में जो वलि दी जाती है वह हिंसा नहीं है, क्योंकि यज्ञों से धर्म होता है तथा इन पशुओं को पीड़ा नहीं होती और ये पशु स्वर्ग जाते हैं।

भगवान् महावीर के द्वारा हुए अहिंसा के प्रचार के कारण इस वलि प्रथा में वहुत कमी हुई। फिर भी किसी न किसी रूप में यह वलि प्रथा आज तक चली आ रही है। आज भी वकरों, भेड़ों, भैंसों, मुर्गों आदि की और कभी-कभी चोरी से मनुष्य की भी वलि दी जाती है। हिन्दू अपने देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए वलि देते हैं। मुसलमान अपने खुदा की राह में अपनी सवसे प्यारी वस्तु की क़ुरवानी देते हैं। (इनकी सवसे प्यारी वस्तु ये दीन-हीन भेड़-वकरे ही होते हैं।) वहुत से आदिवासी भूत-प्रेतों और दुःख वीमारी को अपने से दूर करने के लिए और अगर कोई दुःख वीमारी आ जाये तो उससे वचने के लिये तथा अपने देवताओं को प्रसन्न करने के लिये पशुओं की और कभी-कभी मनुष्यों तक की वलि देते हैं।

क्या इस प्रकार से वलि देना उचित है? क्या इससे

धर्म होता है ? क्या इससे हिन्दुओं के ईश्वर और मुसलमानों के अल्लाह प्रसन्न होते हैं ? क्या इससे किसी की मनोकामनाएं पूरी हो सकती हैं ?

यदि हम वेदों का अवलोकन करें तो उसमें ऐसे अनेकों मन्त्र पाएंगे जिनमें वतलाया गया है कि हिंसा करना महापाप है और हिंसा करने वाला घोर नर्क में जाता है। जिन वेदों में इस प्रकार असन्दिग्ध शब्दों में हिंसा को महापाप वतलाया गया हो उन्हीं वेदों में हिंसा का समर्थन कैसे किया जा सकता है ? तथ्य यह है कि वेद किन्हीं एक ही ऋषि द्वारा एक ही समय में रचे हुए नहीं हैं, वरन् इनकी विभिन्न ऋचाएं, विभिन्न समयों में विभिन्न ऋषियों द्वारा रची गई हैं। जिन ऋषि की जैसी मनोवृत्ति हुई उन्होंने वैसी ही ऋचाएं वना दीं। जो ऋषि दयालु व संयमी थे उन्होंने हिंसा करना पाप वतलाया। जो ऋषि मांसलोलुपी और इन्द्रियों के दास थे उन्होंने पशुओं की वलि देने के समर्थन में ऋचाएं वना दीं। स्मृतियों में तो स्पष्ट रूप से इन सभी का एक साथ विधान किया गया है। वहुत से स्थानों पर ऐसा भी हुआ है कि एक ही शब्द के दो अर्थ होने के कारण व्यक्तियों ने अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल इन द्वयर्थक शब्दों के अर्थ लगा लिये। उदाहरण के लिये हम 'अज' शब्द को लेते हैं। इसका एक अर्थ है, "पुराना धान जो फिर से न उग सके"; इसका दूसरा अर्थ है 'वकरा'। जो विद्वान, संयमी तथा दयालु थे उन्होंने इसका अर्थ पुराना धान माना, किन्तु जो विद्वान मांसलोलुपी थे उन्होंने इसका अर्थ वकरा माना। इसी प्रकार प्राचीन काल में :—

फलों के छिलकों को चर्म कहते थे।

(वोधायन गृह्य सूत्र)

फलों से जो रस निकलता था वह रुधिर कहलाता था। (वृहदारण्यकोपनिषद्)

फलों के गूदे को मांस कहते थे। (चरक संहिता)

फलों की गुठली को अस्थि कहते थे।

(कौटिल्य अर्थशास्त्र) : (सुश्रुत संहिता शा० आ० ३, श्लोक ३२)

फलों के भीतरी भाग को मज्जा कहते थे।

(चरक संहिता)

मांस—The fleshy part of a fruit.

(आप्टेकृत संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी)

Flesh—Soft pulpy substance of fruit.

That part of root, fruit, etc. which is fit to be eaten.

(English Dictionary by J. Ogilvie)

यहां पर हम कुछ और द्वयर्थक शब्द दे रहे हैं —

अनिमिष—देव, मछली, चांडाल, शिष्य व अन्तेवासी।

(वैजयन्ती)

कपि—वन्दर, शिलारस।

आम—मांस, आम्रफल।

शश—खरगोश, लोध्र।

कलभ—हाथी का वच्चा, धतूरे का वृक्ष।

गो-जिह्वा—गाय की जीभ, गोभी।

तुरंग—घोड़ा, सेंधा नमक।

मार्जार—विल्ली, अगस्त्य वृक्ष, हिंगोरी वृक्ष, बिदारी कन्द, लवंग ।

वराह—सूअर, नागरमोथा ।

इसी प्रकार के और भी अनेकों शब्द हैं, जिनका संकलन 'अमरकोश', 'विश्वप्रकाश', 'अनेकार्थ संग्रह' आदि कोशों में दिखलाई पड़ता है। एक शब्द के कई अर्थ होने से लोगों में किसी शब्द के बारे में भ्रम हो जाना स्वाभाविक है। वास्तव में किसी शब्द का अर्थ प्रसंग के अनुसार लगाना चाहिए। कहीं-कहीं ऐसा भी है कि मनुष्य की दुर्भावना, कुविचार, छल-कपट, अहंकार आदि की मनोवृत्ति को सूचित करने के लिए पशु के नाम से पुकारा गया है। ऐसे मन्त्रों का तात्पर्य यही है कि व्यक्ति के अन्दर जो कुविचार, दुर्भावना व पशुवृत्ति है उसकी वलि देनी चाहिए। परन्तु मांसलोलुपी व अर्थलोलुपी व्यक्तियों ने ऐसे शब्दों का तात्पर्य पशु ही मान कर पशुवलि का समर्थन करना प्रारम्भ कर दिया।

आज भी हम समाचार-पत्रों में पढ़ते हैं कि अमुक व्यक्ति ने सन्तान पाने की इच्छा से एक बालक की वलि दे दी, अमुक व्यक्ति ने धन पाने की इच्छा से एक मनुष्य की वलि दे दी। ऐसे व्यक्ति भी संसार में मौजूद हैं, जिन्होंने धन के लोभ में या देवी को प्रसन्न करने के लिए अपनी ही सन्तान की वलि दे दी है। अमरीका जैसे भौतिकवादी देश में भी ऐसे हत्याकांड हुए हैं, जब अपने किसी विश्वास की खातिर सिर फिरे व्यक्तियों ने कई-कई व्यक्तियों की हत्या कर डाली। क्या कोई भी विवेकशील व्यक्ति ऐसे हत्याकांडों को उचित कह सकता है? क्या ऐसे हत्याकांडों से किसी की मनोकामना पूरी हुई है?

हमको इन तथाकथित धर्म-श्रद्धालुओं की मान्यताओं को तर्क की कसौटी पर कसकर देखना है।

क्या ईश्वर और अल्लाह इस प्रकार की पशु बलि से प्रसन्न होते हैं ?

यदि हम ईश्वर और अल्लाह को संसार के समस्त प्राणियों पर दया करने वाला मानें तो कोई भी दयालु ईश्वर या अल्लाह इन निर्दोष व मूक प्राणियों की हत्या से प्रसन्न नहीं हो सकता। एक ओर तो हम ईश्वर और अल्लाह को दयालु, कृपालु, दीनानाथ, सच्चा, न्यायी आदि नामों से पुकारें और दूसरी ओर उनके नाम पर इस प्रकार निर्दयतापूर्वक हत्याकाण्ड करें। क्या ईश्वर और अल्लाह ऐसे क्रूर कार्यों को न्यायोचित कहेंगे ?

क्या ईश्वर और अल्लाह के नाम पर बलि दिये जाने वाले पशुओं को दर्द नहीं होता ?

इसका उत्तर तो कभी भी ऐसे वधस्थलों को देखने से ही मिल सकता है। वध किये जाने वाले पशुओं को पहले से ही अपनी हत्या किये जाने व पीड़ा होने का भान हो जाता है। उनको बलपूर्वक खींच-खींच कर वधस्थलों पर लाया जाता है। बहुत बार तो बधिक इन पशुओं का मुँह रस्सी से बाँध देते हैं, जिससे पीड़ा के कारण उनके मुँह से आवाज़ भी न निकल सके। वध किये जाते समय वह पशु किस प्रकार तड़पता है और किस प्रकार तड़प-तड़प कर उसके प्राण निकलते हैं, यह दृश्य देखने में ही बहुत करुणा-जनक होता है। ऐसे समय में बहुत से बलि देने वाले भी वहां से दूर चले जाते हैं या मुँह फेर कर खड़े हो जाते हैं।

क्या बलि दिये जाने वाले पशु स्वर्ग जाते हैं ?

इस सम्बन्ध में तो कोई भी कुछ नहीं कह सकता।

हां, इतना अवश्य है कि मरते समय जिस पशु को इतनी शारीरिक पीड़ा हो रही हो उसके हृदय में न जाने कितनी तीव्र दुर्भावनाएं उत्पन्न हो रही होंगी ? क्या हृदय में तीव्र दुर्भावनाएं लेकर मरने वाला कोई भी जीव स्वर्ग जा सकता है ? एक बात और, यदि स्वर्ग प्राप्त करने का मार्ग इतना सीधा व सरल है तो मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करने के लिए वर्षों तक कठोर तपस्या क्यों करते हैं ? भगवान की वेदी पर अपनी ही बलि चढ़वा दिया करें, कुछ क्षणों का कष्ट है, फिर तो अनन्तकाल तक सुख ही सुख है।

कुछ समय पहले तक वाराणसी में कुछ स्वार्थी पण्डे, अन्धश्रद्धालु व धर्मान्ध व्यक्तियों को उनकी अपनी ही इच्छानुसार काट कर गंगा जी में बहा देते थे। इन दुष्ट पण्डों ने यह विश्वास फैला रखा था कि इस प्रकार प्राण देने वाला व्यक्ति सीधा 'स्वर्ग' जाता है। क्या स्वर्ग का यही मार्ग है ?

राजपूत काल में और उससे भी पहले सैंकड़ों वर्षों तक मृतक पुरुष के साथ उसकी विधवा पत्नी को भी जीवित जला दिया जाता था। यह सती प्रथा कहलाती थी। कुछ विधवाएं तो स्वेच्छा से ही पति के साथ सती हो जाती थीं, जबकि बहुत-सी विधवाओं को बलपूर्वक उनके मृत पतियों की चिताओं में बांध कर जला दिया जाता था। इन विधवाओं को यही समझाया जाता था कि इस प्रकार सती होने से वे स्वर्ग में जायेंगी और अपने स्वर्गवासी पति की, जो स्वर्ग में उनकी राह देख रहे हैं, फिर से पत्नी बन जायेंगी। इस मान्यता में कितनी सच्चाई है, इसको कोई भी विवेकशील व्यक्ति समझ सकता है ? क्या सारे पति मर कर स्वर्ग में ही जाते हैं, चाहे जीवन में उन्होंने कितने

ही पाप क्यों न किये हों ?

कुछ व्यक्ति धर्म परिवर्तन कराने के लिए और अपना धर्म फैलाने के लिए हिंसा का सहारा लेते हैं। उनका न्याय और सिद्धान्त यही है कि किसी व्यक्ति को जीना है तो उनका धर्म अंगीकार करके जिए अन्यथा विधर्मियों को जीने का अधिकार ही नहीं है। तलवार के वल पर धर्म परिवर्तन कराने को वह धार्मिक कृत्य मानते हैं। इस प्रकार धर्म परिवर्तन कराने में कितना धर्म होता है, यह तो इस प्रकार धर्म परिवर्तन कराने वाले व्यक्ति ही जानें परन्तु कोई भी विवेकशील व्यक्ति इस वात का समर्थन नहीं करेगा।

अव से ढाई-तीन सौ वर्ष पहले तक यूरोप में ईसाई धर्म को ही मानने वाले दो सम्प्रदायों Catholics और Protestants में कितने भयंकर युद्ध हुए हैं और एक सम्प्रदाय वाले व्यक्तियों ने दूसरे सम्प्रदाय वाले व्यक्तियों पर कैसे-कैसे अमानुषिक अत्याचार किये हैं, इसको इतिहास के विद्यार्थी भली प्रकार जानते हैं। क्या कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति इन युद्धों को उचित वता सकता है ? इस प्रकार धर्म के नाम पर रक्तपात करने से धर्म की कितनी हानि हुई है, यह इन धर्मान्ध व्यक्तियों को नहीं मालूम। आज के नवयुवक धर्म के नाम पर इसी प्रकार के रक्तपात को देखकर धर्म से विमुख होते जा रहे हैं।

इन तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने से यही पता चलता है कि किन्हीं व्यक्तियों ने अपनी दूषित मनोवृत्ति की तुष्टि के लिए अर्थ के अनर्थ कर दिये हैं। वास्तव में वलि देने और कुर्वानी देने का तात्पर्य तो यही है कि अपनी दुर्भावनाओं की, अपनी झूठी माया-ममता की, अपनी

विषय-वासनाओं की और अपने अन्दर छिपी पशु वृत्ति की बलि दो। ऐसा करने से ही आत्मा पवित्र व उन्नत होगी और उसकी मुक्ति अर्थात् सच्चे सुख का मार्ग प्रशस्त होगा। इसके विपरीत रक्तपात से और आत्म-हत्या करने से कभी भी धर्म नहीं होता। यह तो हिंसा है और केवल हिंसा। ऐसे कार्यों को कभी धर्म नहीं माना जा सकता, क्योंकि इनसे मनुष्य की सात्विकता और पवित्रता नष्ट हो जाती है।

हिंसा से बचने, अहिंसा धर्म का पालन करने और अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये रात्रि में भोजन करना उचित नहीं है। यह सम्भव है कि पश्चिमी देशों की जल-वायु भिन्न होने के कारण वहां रात्रि भोजन से स्वास्थ्य को इतनी हानि न होती हो, जितनी भारत में होती है।

रात्रि भोजन के पक्ष में कुछ व्यक्ति यह तर्क देते हैं कि जब रात्रि में विद्युत् प्रकाश द्वारा दिन का सा उजाला हो सकता है तो रात्रि में भोजन करने में कोई बुराई नहीं है।

किन्तु उनका यह तर्क ठीक नहीं है। विद्युत् के कृत्रिम प्रकाश और सूर्य के प्राकृतिक प्रकाश में बहुत अन्तर है। बरसात के मौसम में दिन के समय बिजली की रोशनी पर एक भी मच्छर नहीं आता परन्तु रात्रि होने पर उसी रोशनी पर हजारों मच्छर इकट्ठे हो जाते हैं।

सूर्य के प्रकाश में जितनी अच्छी तरह से वस्तुएं दिखाई देती हैं, वैसी बिजली की रोशनी में कभी दिखाई नहीं दे सकतीं।

दिन के समय में वायु में आक्सीजन (Oxygen) की मात्रा अधिक होती है जो हमारे पेट में पड़े भोजन को जल्द पचाने में सहायता करती है।

सूर्य का प्रकाश कीटाणुओं का नाशक होता है, जबकि रात्रि का अन्धकार कीटाणुओं की वृद्धि में सहायक होता

है। विजली का कृत्रिम प्रकाश भी इन कीटाणुओं की वृद्धि को नहीं रोक सकता।

बहुतेरे कीड़े ऐसे होते हैं, जो दिन में तो अंधेरे कोनों में छिपे रहते हैं, परन्तु रात को उन कोनों से निकल कर वे उछल-कूद करने लगते हैं। रात्रि में भोजन बनाते और भोजन खाते समय ऐसे कीड़े और रात्रि को ही उत्पन्न होने वाले अन्य कीड़े, पतंगे व कीटाणु हमारे भोजन में गिर पड़ते हैं और भोजन को विषैला बना देते हैं। समाचार-पत्रों में इस प्रकार विषैले हुए भोजन खाने से हुई मृत्युओं के समाचार हम प्रायः पढ़ते ही रहते हैं।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी देखा जाये तो हमें अपना भोजन सोने से तीन-चार घण्टे पूर्व ही कर लेना चाहिए, जिससे कि सोने के समय तक हमारा किया हुआ भोजन हजम हो जाये। यदि सोने के समय तक भोजन हजम नहीं होता तो वह आमाशय में पड़ा सड़ता रहता है और रोग उत्पन्न करता है। आजकल पेट की बीमारियों के बढ़ने का मुख्य कारण यह रात्रि-भोजन ही है। यदि हम रात्रि को भोजन न करके दिन में ही भोजन कर लिया करें तो पेट में होने वाले कम से कम नव्वे प्रतिशत रोग उत्पन्न ही न हों।

यदि कोई संस्था रात्रि भोजन व मांसाहार के आधार पर रोगियों का सर्वेक्षण करे तो हमें पूर्ण विश्वास है कि मांसाहार व रात्रि-भोजन करने वाले और शाकाहार व दिवा भोजन करने वाले रोगियों का अनुपात कम से कम बीस व एक का अवश्य होगा।

यदि पशु-पक्षियों को दिन के समय भूखा न रखा गया हो तो वे रात को कभी नहीं खाते। इससे स्पष्ट है कि प्राकृतिक रूप से भी रात्रि भोजन उचित नहीं है।

बहुत पुराने समय से अंग्रेजी में एक कहावत प्रचलित है :

Early to bed and early to rise,

Makes a man healthy, wealthy and wise.

इसका अर्थ यही है कि जल्दी सोना व जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ, धनवान व चतुर बनाता है।

हम जल्दी उसी दशा में सो सकते हैं, जबकि भोजन जल्दी ही अर्थात् दिन छिपने से पहले ही कर लें। ऐसा करने से हमारा भोजन तीन-चार घण्टे में पच जायेगा और हम नौ-दस बजे के बीच आसानी से सो सकेंगे। किसी भी शरीर-विज्ञानशास्त्र में ऐसा नहीं लिखा है कि व्यक्ति को रात्रि में भोजन करना चाहिए। सब जगह यही लिखा हुआ है कि सोने के समय तक हमारा खाया हुआ भोजन पच जाना चाहिए और ऐसा तभी हो सकता है, जब हम दिन में ही भोजन कर लें।

रात्रि-भोजन-त्याग से एक लाभ और भी है। ऐसा करने से मांसाहार व विशेषकर मदिरापान में भी अपने आप ही कमी आ जायेगी। आज कल रात्रि भोजन के साथ ही मांसाहार व मदिरापान का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। दिन के समय तो किसी को इतनी फ़ुरसत नहीं होती कि वह घण्टे-दो-घण्टे मांस व मदिरा सेवन पर नष्ट करे। इस-लिए इन अनर्थकारी पदार्थों का सेवन अधिकांशतया रात को फ़ुरसत से ही किया जाता है। यदि हम रात्रि-भोजन का त्याग कर दें तो यह दुर्व्यसन स्वयमेव ही छूट जायेंगे।

अतः यह स्पष्ट है कि रात्रि-भोजन का त्याग करने से हम केवल अहिंसा धर्म का पालन ही नहीं करेंगे, अपितु अपना स्वास्थ्य भी ठीक रख सकेंगे, धन भी बचा सकेंगे और बुरी आदतों से भी बचे रहेंगे।

# मांसाहार

अब हम मांसाहार के सम्बन्ध में कुछ विचार करेंगे।

संसार में मांसाहार के लिये जितनी हिंसा की जाती है, उतनी हिंसा और किसी भी कार्य के लिये नहीं होती। प्रतिदिन करोड़ों मछलियां व पशु-पक्षी मांस प्राप्त करने के लिये वध किये जाते हैं।

## मांसाहार के पक्ष में कुछ तर्क व उनका समाधान

(१) कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि हमारे भोजन से हिंसा व अहिंसा का कोई सम्बन्ध नहीं है। हम कुछ भी खायें, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। हमको प्रत्यक्ष में हिंसा नहीं करनी चाहिये।

यह तर्क नहीं, अपितु उसी प्रकार का कुतर्क है जिस प्रकार कुछ व्यक्ति कहते हैं कि व्यापार में झूठ बोलने में, कम तोलने में, मिलावट करने में कोई बुराई नहीं है; क्योंकि ऐसा किये बिना व्यापार चल नहीं सकता और व्यापार में ऐसा करने से हमारी व्यक्तिगत ईमानदारी पर कोई आंच नहीं आती। क्या कोई विवेकशील व्यक्ति ऐसे तर्क को मान्य करके व्यापार में इस प्रकार की बेईमानी को उचित ठहरायेगा ? इसी प्रकार मांसाहारी भी अहिंसक कैसे कहला सकते हैं, यह बात समझ से परे है। यह सर्वविदित है कि मांस प्राप्त करने के लिये स्वस्थ पशु-पक्षी का वध किया जाता है। स्वयं मरे हुए पशु-पक्षी का मांस नहीं

खाया जाता, क्योंकि वह विषैला हो जाता है। इसलिए यह तथ्य है कि विना हिंसा के हम मांस प्राप्त नहीं कर सकते। अतः जो मांसाहार करता है वह शत-प्रतिशत हिंसक है। किसी भी अन्य जीव के मांस से अपना पोषण करना कहां की नीति और न्याय है? क्या मनुष्यों की भांति पशु-पक्षियों को भी जीने का अधिकार नहीं है?

(२) मांसाहार के पक्ष में एक तर्क यह दिया जाता है कि सारे संसार में सूक्ष्म जीव भरे पड़े हैं, वनस्पति व अनाज में भी जीवन होता है तथा जब तक हम जीवित हैं तब तक इनकी हिंसा होती रहनी अवश्यम्भावी है, फिर केवल मांसाहार का ही निषेध क्यों किया जाये?

यह ठीक है कि संसार में पूर्ण अहिंसक बनकर रहना असम्भव है, परन्तु इसका तात्पर्य यह तो नहीं कि हम अनावश्यक हिंसा भी करते रहें। हम पहले भी कई बार कह आये हैं कि हिंसा का हमारे मन के भावों से गहरा सम्बन्ध है। जीवन के आवश्यक क्रिया-कलाप करते हुए जो हिंसा हमसे हो जाती है वह हम जान-बूझकर नहीं करते और उस हिंसा से हमारा कोई स्वार्थ भी सिद्ध नहीं होता। वह हिंसा तो लाचारी में हो जाती है। परन्तु मांस प्राप्त करने के लिये तो एक जीव का जान-बूझ कर वध किया जाता है। यह हिंसा संकल्पी हिंसा के अन्तर्गत आती है। जो हिंसा करना हमारे लिए आवश्यक नहीं है और जिस हिंसा से हम आसानी से वच सकते हैं, ऐसी निरर्थक हिंसा क्यों की जाये?

यहाँ एक तथ्य और भी विचारणीय है। संसार में प्राणियों के पांच इन्द्रियां—यथा स्पर्शन (शरीर), रसना (जिह्वा), घ्राण (नाक), चक्षु (आंखें) और कर्ण (कान)

तथा एक मन होता है। स्पर्शन इन्द्रिय का विषय महसूस करना है, रसना इन्द्रिय का विषय स्वाद लेना होता है, घ्राण का विषय सूंघना होता है, चक्षु का विषय देखना और कान का विषय सुनना होता है। इन इन्द्रियों के आधार पर संसार के समस्त प्राणियों को हम छह श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) पहली श्रेणी के जीव तो इतने अनुन्नत होते हैं कि उनके केवल एक इन्द्रिय अर्थात् केवल शरीर ही होता है; जैसे—वनस्पति।

(ख) दूसरी श्रेणी के जीव ऐसे होते हैं जिनके स्पर्शन व रसना, दो इन्द्रियां होती हैं; जैसे—लट, केंचुआ, शंख, कौड़ी आदि जीव।

(ग) तीसरी श्रेणी के जीव स्पर्शन, रसना और घ्राण, इन तीन इन्द्रियों वाले होते हैं; जैसे—सुरसुरी, खटमल, जूं, जोंक, चींटी आदि जीव।

(घ) चौथी श्रेणी के जीव ऐसे होते हैं जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियां होती हैं; जैसे—मक्खी, भौंरा, ततैया आदि जीव।

(च) पांचवीं श्रेणी के जीवों के पांचों इन्द्रियां स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण होती हैं; जैसे—पानी में रहने वाले सांप आदि जीव।

(छ) छठी श्रेणी के जीवों के पांचों इन्द्रियां और मन होता है; जैसे—घोड़ा, गाय, शेर, मनुष्य आदि जीव।

इस प्रकार ये जीव उत्तरोत्तर उन्नत श्रेणी के होते जाते हैं। पहली श्रेणी के जीवों की हिंसा की अपेक्षा दूसरी श्रेणी के जीवों की हिंसा में हजारों गुना पाप होता है। दूसरी श्रेणी के जीवों की अपेक्षा तीसरी श्रेणी के जीवों की

हिंसा में हजारों गुना पाप है। इसी प्रकार छठी श्रेणी के जीवों की हिंसा में तो बहुत अधिक दोष होता है और मनुष्यों की हिंसा में सबसे अधिक दोष होता है। इस तथ्य को देखते हुए कोई भी विवेकशील व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि पहली श्रेणी वाले जीवों को हिंसा छठी श्रेणी वाले जीवों की हिंसा के बराबर ही है। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम निचली श्रेणी के जीवों की हिंसा करते रहें। इसके विपरीत हम जो भी कार्य करें बहुत सावधानीपूर्वक और करुणा की भावना से करें, जिससे यथासम्भव किसी भी जीव को कष्ट न होने पावे। हम भोजन भी इतना ही करें, जितना कि शरीर के लिए आवश्यक हो। जितना सादा व कम मात्रा में हम भोजन करेंगे उतनी ही हिंसा भी कम होगी। इसके अतिरिक्त ऐसा भोजन करने से हम बीमार भी नहीं पड़ेंगे और हमारा स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा।

(३) कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि यदि हम अनाज व फल खायेंगे तो उनमें भी जीवन होने के कारण बहुत से जीवों की हिंसा होगी, परन्तु यदि हम मांस खायेंगे तो केवल एक पशु की ही हिंसा होगी। इसलिए शाकाहार में अधिक पाप है और मांसाहार में कम।

इन व्यक्तियों का यह तर्क ठीक नहीं है। जैसा कि हमने ऊपर बताया कि वनस्पति जीव की हिंसा की अपेक्षा एक पशु की हिंसा में लाखों गुना पाप होता है।

इसके अतिरिक्त एक पशु में केवल एक ही जीव नहीं होता। उस पशु के शरीर में भी लाखों सूक्ष्म जीव होते हैं, जो उस पशु के शरीर के आधार पर रहते हैं। उस पशु को मारने से उन सब जीवों की हत्या का पाप भी लगेगा। कच्चे मांस में व पके मांस में भी प्रति क्षण कीटाणु उत्पन्न

होते रहते हैं, मांस भक्षण से इन सबकी हत्या का दोष भी लगता है। एक बात और है, न तो मांस कच्चा ही खाया जा सकता है और न केवल मांस पर ही कोई व्यक्ति जीवित रह सकता है। मांस तो मिठाई की तरह स्वाद के लिये खाया जाता है। आजकल अपने को आधुनिक जिताने के लिये भी मांस खाया जाने लगा है। इसलिए अनाज व फलों का सेवन तो अनिवार्य है ही और उनके प्रयोग से जो हिंसा होती है उस हिंसा से तो कोई भी व्यक्ति बच ही नहीं सकता; परन्तु मांस खाना तो अनावश्यक हिंसा करना है।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी विचारणीय है। जिस पशु का मांस प्राप्त करना होता है उसका वध किया जाता है, जिससे कि उसका जीवन सदैव के लिये समाप्त हो जाता है। परन्तु वृक्षों को हानि पहुंचाये बिना ही उनसे फल प्राप्त किये जाते हैं। यदि वृक्ष से पका हुआ फल तोड़ा नहीं जाय तो कुछ समय पश्चात् वह फल अपने-आप ही वृक्ष से टूट जाता है। फिर जैसा कि हमने पहले बतलाया कि वनस्पति में जीवन अवश्य होता है, परन्तु वह बिल्कुल ही क्षुद्र और अनुन्नत अवस्था में होता है।

इन तथ्यों को देखते हुए यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि शाकाहार में मांसाहार की अपेक्षा बहुत कम पाप होता है।

(४) कुछ व्यक्ति यह तर्क देते हैं कि संसार की जन-संख्या जिस तेजी से बढ़ती जा रही है उस अनुपात से अनाज का उत्पादन नहीं बढ़ रहा है, इसलिए अन्न की कमी को पूरा करने के लिए मांसाहार आवश्यक है।

यह ठीक है कि संसार की जनसंख्या बढ़ रही है और यह भी ठीक है कि अन्न का उत्पादन उसी अनुपात से नहीं

बढ़ रहा है, परन्तु इसके लिए मनुष्य स्वयं दोषी है। वह अपने दोष के लिये इन निरपराध जीवों की हत्या क्यों करे ? जनसंख्या को सीमित रखने के लिए हमारे पूर्वजों ने संयम रखने का उपदेश दिया था। व्यक्ति जितने संयमी होंगे उतनी ही जनसंख्या सीमित रहेगी। उनका स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा और वे बलवान भी होंगे। परन्तु आज के वातावरण में संयमपूर्वक जीवन विताना बहुत कठिन हो गया है। फिर भी वैज्ञानिकों ने गर्भ-निरोध के नये-नये उपाय खोज निकाले हैं, जिनका प्रयोग करने से जनसंख्या सीमित रखी जा सकती है।

यहां एक तथ्य और भी ध्यान में रखने योग्य है। मांसाहार से जनसंख्या में वृद्धि की अधिक सम्भावना होती है, क्योंकि मांस व अण्डों के सेवन से व्यक्ति की तामसिक प्रवृत्ति बढ़ती है और वह और भी अधिक विषय-वासनाओं की ओर आकृष्ट होता है, इसके विपरीत शाकाहार सात्विक होता है और संयमपूर्वक जीवन विताने में सहायक होता है, जिससे जनसंख्या पर अंकुश रखा जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जनसंख्या को सीमित रखने में मांसाहार एक बड़ी रुकावट है।

जहां तक अनाज की पैदावार का प्रश्न है, सभी जानते हैं कि अभी बहुत सी ऐसी भूमि पड़ी हुई है जहाँ पर थोड़ा परिश्रम करके अनाज उत्पन्न किया जा सकता है। बहुत सी खेती योग्य भूमि ऐसी है, जहाँ पर सिंचाई के साधन न होने अथवा बाढ़ आ जाने व सूखा पड़ जाने से अनाज कम होता है। ऐसी भूमि पर थोड़े से परिश्रम से पर्याप्त अनाज उगाया जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमने अभी तक उपलब्ध साधनों का भी पूरा उपयोग नहीं

किया है। इन साधनों का उपयोग करने के बजाय कुछ व्यक्ति अनाज की कमी का बहाना बनाकर, सरल उपाय होने के कारण, मांसाहार को प्रोत्साहन देते रहते हैं।

एक बात और है। मांस प्राप्त करने के लिए जो पशु-पक्षी पाले जाते हैं वे भी अनाज व घास आदि वनस्पतिक पदार्थ खाकर बढ़ते हैं। उनको खिलाने के लिए भी हमको घास व अनाज उत्पन्न करना पड़ता है। इस बात में क्या तुक है कि पहले तो भूमि में घास व अन्य खाद्य पदार्थ उत्पन्न करके इन पशुओं को खिलायें और फिर उनका वध करके उनका मांस हम स्वयं खायें। वैज्ञानिकों ने आंकड़ों के द्वारा सिद्ध किया है कि जितनी भूमि पर पशुओं को पालकर हम उनका मांस प्राप्त करते हैं, उतनी ही भूमि पर यदि हम अपने खाने योग्य अनाज उत्पन्न करें तो हम उनके मांस की अपेक्षा बहुत अधिक मात्रा में अनाज प्राप्त कर सकते हैं।

(५) मांसाहार के पक्ष में एक तर्क यह भी दिया जाता है कि मांसाहार से हम बलवान और बहादुर बनते हैं।

यह तर्क भी ठीक नहीं है। मांस व अण्डों और अन्य अनाजों, फलों व मेवों आदि में कितनी-कितनी शक्ति होती है, इसका चार्ट हम पुस्तक के अन्त में दे रहे हैं। इस चार्ट को देखने से पता चल जाता है कि मांस व अण्डों में अनाज व अन्य वनस्पतिक खाद्यों से अधिक शक्ति नहीं होती। हाथी, घोड़ा, बैल, भैंसा, ऊंट आदि भारी काम करने वाले पशु सब अपनी शक्ति वनस्पतिक खाद्यों से ही प्राप्त करते हैं। मनुष्यों में भी शाकाहारी व्यक्ति मांसाहारियों से निर्बल नहीं होते।

जहां तक मांसाहार द्वारा बहादुर बनने की धारणा है

वह भी निराधार है। मांसाहार से हम निर्दयी व क्रूर तो अवश्य बन जाते हैं, परन्तु बहादुर नहीं। हम प्रतिदिन देखते हैं कि एक गुण्डा किसी की जेब काटकर, किसी का बटुवा छीन कर, किसी के साथ मार-पीट करके, किसी की हत्या करके आराम से चला जाता है, परन्तु मांसाहारी व्यक्तियों का भी यह साहस नहीं होता कि उसको पकड़ लें। यदि मांसाहार से बहादुरी बढ़ती होती, तो आज संसार में अपराधों की संख्या बढ़ने के स्थान पर कम हो गयी होती; क्योंकि संसार में अधिकतर व्यक्ति मांसाहारी ही हैं। वे सब मांसाहारी व्यक्ति बहादुर होते और या तो अपराधी को अपराध ही नहीं करने देते और यदि वह अपराध कर भी चुका होता तो उसे तुरन्त पकड़ लेते। वास्तव में मांसाहारी की अपेक्षा शाकाहारी व्यक्तियों में स्फूर्ति और सहनशीलता अधिक होती है और वे मांसाहारियों की अपेक्षा अधिक समय तक परिश्रम कर सकते हैं।

(६) कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि मांस स्वादिष्ट होता है। परन्तु यह बात भी ठीक नहीं है। यदि मांस स्वादिष्ट होता तो इस को भी फलों की तरह बिना पकाये और बिना घी मसाला डाले खा लिया करते। इसके विपरीत इसको पकाकर और इसमें घी व मसाले डालकर इसको स्वादिष्ट बनाया जाता है।

यदि हम आर्थिक दृष्टि से भी विचार करें तो मांस से अनाज बहुत सस्ता होता है और शाकाहार से निर्धन वर्ग भी अपना पेट भर सकता है।

(७) कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि मांस तो पशु-पक्षी को मारकर ही प्राप्त किया जाता है, इसलिए इसे प्राप्त करने में हिंसा होती है। परन्तु अण्डे तो मुर्गियों को बगैर

कष्ट दिये ही प्राप्त किये जाते हैं, इसलिये जैसे दूध पीने में बुराई नहीं है उसी प्रकार अण्डे खाने में भी कोई बुराई नहीं है।

परन्तु अण्डों और दूध को एक ही श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। दोनों का विश्लेषण करने से भी दोनों में अलग-अलग तत्व पाये जाते हैं। समय पूरा होने पर अण्डों से पक्षी निकलते हैं, इसलिए अण्डा स्वयं भी जीव है, परन्तु दूध से ऐसा कोई जीव नहीं बनता। दूध देने के पश्चात् पशु को इस दूध से कुछ मोह नहीं रहता, जबकि पक्षी अपने अण्डों को अपने बच्चों के समान ही प्यार करते हैं, उनकी हर प्रकार से देख भाल करते हैं और यदि उनके अण्डों को कोई छेड़ता है तो अपनी जान पर खेलकर भी उनकी रक्षा करते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अण्डों को और दूध को एक समान नहीं माना जा सकता।

इस सम्बन्ध में कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि आजकल जीव रहित अण्डों का उत्पादन हो रहा है। इन अण्डों में से पक्षी नहीं निकलते। इसलिए इन जीव रहित अण्डों के सेवन में हिंसा नहीं है।

परन्तु यह तर्क भी ठीक नहीं है। क्योंकि

(क) जो वस्तु शरीर से बनती है वह मांस की श्रेणी में ही आती है। इसलिए वह अभक्ष्य ही होती है।

(ख) इस प्रकार के अण्डों का और साधारण अण्डों का विश्लेषण करने से इनमें कोई भेद दिखाई नहीं देता।

(ग) इस बात का भी क्या विश्वास है कि इन अण्डों में जीव नहीं होता। सम्भव है कि ऐसे अण्डों में जो जीव होता है वह इतना शक्तिशाली न होता हो, जो पक्षी का रूप ग्रहण कर सके।

(घ) साधारणतया देखने से इन अण्डों व साधारण अण्डों में कोई भेद दिखाई नहीं देता, इसलिए खाने वाले इन अण्डों की पहचान कैसे करेंगे ? जब कोई व्यक्ति इन तथाकथित जीव रहित अण्डों का सेवन करने लगता है तो उसको अन्य साधारण अण्डों के सेवन करने में भी कोई ग्लानि नहीं होती और वह अन्य साधारण अर्थात् जीव सहित अण्डे भी खाने लगता है।

इन तथ्यों को दृष्टि में रखकर इन तथाकथित जीव-रहित अण्डों को शाकाहार में नहीं माना जा सकता।

कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि दूध भी पशु के शरीर से निकलता है, इसलिए एक अहिंसक को दूध भी नहीं पीना चाहिए।

इस तर्क में कुछ तथ्य अवश्य है। इसी कारण से यूरोप के देशों में ऐसे कट्टर शाकाहारियों की संख्या बढ़ती जा रही है, जो दूध का सेवन भी नहीं करते। परन्तु जैसा हम पहले भी कह चुके हैं दूध, मांस व अण्डे बिलकुल भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। दूध जब पशुओं के स्तनों से निकलता है तब वह बिलकुल शुद्ध होता है। यद्यपि समुचित सावधानी न रखने से उसमें बाद में बैक्टीरिया उत्पन्न हो जाते हैं। मनुष्य के शरीर पर दूध का प्रभाव और मांस व अण्डों का प्रभाव बिलकुल भिन्न-भिन्न होता है। दूध देने के बाद पशु को कोई कष्ट नहीं होता, अपितु उसे कुछ शान्ति का ही अनुभव होता है। क्योंकि जो दूध उसके थनों में इकट्ठा होता है वह यदि निकाला न जाये तो पशु को कष्ट होता है। दूध देने के पश्चात् पशु को उस दूध से कोई मोह नहीं रहता। इन सब तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए दूध को मांसाहार में नहीं माना जा सकता।

फिर भी जो व्यक्ति दूध का त्याग कर सकते हैं उन्हें उसका त्याग अवश्य कर देना चाहिए। हमको ऐसे दूध का प्रयोग तो करना ही नहीं चाहिए जो पशुओं को कष्ट देकर और उनके बच्चों को भूखा रखकर प्राप्त किया गया हो।

(८) कुछ व्यक्ति कहते हैं कि भगवान् महावीर के समय में जैन मुनि भी मांसाहार करते थे। इस बात के समर्थन में वे किन्हीं द्वेषी लेखकों की लिखी पुस्तकों से दो-चार उद्धरण भी देते हैं।

इन व्यक्तियों का यह कहना केवल भ्रम है और एक गलत बात को सही ठहराने का कुप्रयास है। यह बात समझ में नहीं आती कि जो जैन मुनि सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों की भी रक्षा करने का प्रयत्न करते थे और उनकी हत्या करने को पाप बतलाते थे, वे मांसाहार किस प्रकार कर सकते थे ? एक ओर तो वे अहिंसा को परम धर्म बतलाते और दूसरी ओर हिंसा द्वारा प्राप्त मांस का भक्षण करते तो उनके उपदेश का प्रभाव जन-साधारण पर कैसे पड़ सकता था ?—यह बात समझ में आने वाली नहीं है। बड़े-बड़े इतिहासज्ञों ने यह स्वीकार किया है कि जैन मुनियों के उपदेशों और उनके तदनुसार आचरण के कारण ही भारत में अहिंसा धर्म का इतना अधिक प्रचलन हुआ और मांसाहार में कमी हुई।

जैन मुनियों द्वारा मांसाहार न करने के समर्थन में हम एक बार फिर बौद्ध ग्रन्थ 'मज्झिम निकाय महासीहनाद सुत्त १२' का हवाला देते हैं, जहां पर महात्मा बुद्ध ने कहा है, (जब वह जैन मुनि की अवस्था में थे तब) "...न मछली, न मांस, न मदिरा, न सड़ा मांड खाया...मैं एक बूंद पानी पर भी दयालु रहता था। क्षुद्र जीव की हिंसा

भी मेरे द्वारा न हो इतना मैं सावधान था।" यह सर्व-विदित है कि कुछ समय पश्चात् महात्मा बुद्ध ने इस कठिन मार्ग को त्याग कर मध्यम मार्ग अपना लिया था। उन्होंने अपने अनुयाइयों को ऐसा मांस खाने की आज्ञा दे दी थी, जो उनके लिये न वनाया गया हो। इस तनिक-सी छूट के कारण ही वौद्ध धर्मावलम्वी जी खोल कर मांसाहार करते हैं।

वास्तव में इन व्यक्तियों ने जिन शव्दों का मांसपरक अर्थ कर लिया है वे द्वयर्थक शव्द हैं। आजकल उनका अर्थ मांस माना जाता है, परन्तु प्राचीन शव्दकोषों के अनुसार उनका अर्थ फलों का विशेष भाग माना जाता है—जैसे फल के गूदे को आजकल गूदा कहते हैं, वही गूदा प्राचीन समय में प्राचीन शव्दकोषों के अनुसार मांस कहलाता था।

इस सम्वन्ध में हम वर्तमान काल का एक उदाहरण देते हैं। कुछ साल पहले तक कवाव केवल मांस के ही वनाये जाते थे, परन्तु आजकल फल व सब्जियों के कवाव भी वनने लगे हैं। आधुनिक सभ्यता वाले परिवारों में, जहां अभी तक मांसाहार का प्रचलन नहीं हुआ है, इन फलों व शाकों के वने कवावों को फ़ैशन समझ कर शौक से खाया जाता है और उन्हें कवाव ही कहा जाता है। इसी प्रकार फलों, सब्जियों व मिठाइयों को इस प्रकार काट कर व पका कर व सजा कर भोजन की थाली में रखते हैं कि दूर से देखने पर वह मांस ही प्रतीत होता है।

इन तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए यह कहना कि जैन मुनि मांसाहार करते थे, उन पर मिथ्या आरोप लगाना है।

(६) आधुनिक इतिहासकार कहते हैं कि आज से हजारों वर्ष पहले मनुष्य असभ्य था। वह जंगल में रहता

था और पशु-पक्षियों को मारकर खाता था। कुछ काल के पश्चात् उसने पशु-पक्षियों को पेड़ पर उगे हुए फलों को खाते हुए देखा तो उसने भी उन फलों को चखा। वे फल उसको मांस से भी अधिक स्वादिष्ट लगे तब उसने फलों को खाना प्रारम्भ कर दिया और मांस का सेवन कम कर दिया। फिर कुछ काल और बीता। मनुष्य अधिक सभ्य हुआ और उसने फल उगाना व खेती करना सीख लिया। तब वह अनाज, फल व सब्जी उत्पन्न करने लगा। पशुओं का मांस खाने के बजाय वह उनका दूध पीने लगा और उन पशुओं से अपना भारी काम कराने लगा। इस प्रकार जैसे-जैसे मनुष्य सभ्य व सुसंस्कृत होता गया वह मांस का सेवन कम करता गया और शाकाहार का सेवन बढ़ाता गया। इस प्रकार इतिहासकार बताते हैं कि मांसाहार असभ्यता की निशानी है और शाकाहार सभ्यता की। यह कथन किसी शाकाहारी इतिहासकार का नहीं, अपितु मांसाहारी इतिहासकारों का है। इसलिए यदि हम वास्तव में सभ्य व सुसंस्कृत बनना और कहलाना चाहते हैं तो हमको मांसाहार का त्याग कर देना चाहिए।

देखने में भी मांस घिनौना और ग्लानि पैदा करने वाला दिखलाई देता है, जबकि फल देखने से ही आंखों व मस्तिष्क में ठण्डक व ताज़गी पहुंचाते हैं। बेचने वाले भी फल-सब्जियों को सजा कर रखते हैं, जबकि मांस को ढक कर। मांस के लिये जहां पर पशुओं का वध किया जाता है वहां का दृश्य तो इतना वीभत्स और करुणाजनक होता है कि अधिकांश आदमी तो वहाँ खड़े भी नहीं रह सकते।

एक बात और भी है, अंग्रेजी न जानने वाले भी मांस ... उसको मीट (Meat) कहते हैं। जिस

प्रकार मल विसर्जन के लिये आज कल लैट्रिन (Latrin) शब्द का प्रयोग बढ़ता जा रहा है, उसी प्रकार मांस के बजाय मीट कहने का रिवाज बढ़ता जा रहा है क्योंकि मल विसर्जन के समान मांस भी घृणा सूचक शब्द है।

## स्वास्थ्य की दृष्टि से मांसाहार मनुष्यों के अनुकूल नहीं है

मांस व अण्डों का मनुष्य के शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है और वह मनुष्य के लिये कितने हानिकारक हैं, इस सम्बन्ध में डाक्टरों की राय जान लेना विशेष रुचिकर और ज्ञानवर्द्धक होगा।

मांसाहार का मनुष्य के शरीर पर अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए जब भी कोई व्यक्ति बीमार पड़ता है तो डाक्टर उसको मांस व अण्डों का सेवन करना बन्द करा देते हैं और जब तक वह पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हो जाता तब तक उसको शाकाहार पर ही रखते हैं।

डाक्टर रोबर्ट ग्रोस और प्रोफ़ेसर इरविन डेविडसन ने लिखा है, "प्रत्येक मनुष्य के शरीर के खून में लगभग २० ग्रेन कोलेस्ट्रोल नामक अल्कोहल पाया जाता है, जो कि दिल की बीमारी पैदा करता है। अगर किसी कारण से शरीर में कोलेस्ट्रोल की मात्रा बढ़ जाये तो हाई ब्लड प्रेशर आदि कई भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। एक अण्डे की ज़रदी में चार ग्रेन कोलेस्ट्रोल पाया जाता है। इसलिए अण्डे की ज़रदी मनुष्य के लिये हानिकारक होती है। अण्डे खाने से खून में कोलेस्ट्रोल की मात्रा बढ़ जाती है। इस कोलेस्ट्रोल की काफी मात्रा हमारे जिगर में जमा हो जाती है, फिर यह पित्त की थैली में पथरी को पैदा

करती है। यह कोलेस्ट्रोल रक्त में मिलकर हृदय में रक्त ले जाने वाली नाड़ियों में जमा हो जाता है। इससे हाई ब्लड प्रेशर जैसी बीमारियां, दिमाग की बीमारियां, जिगर की बीमारी, गुरदे की सूजन, जोड़ों का दर्द आदि भयंकर बीमारियां पैदा हो जाती हैं। इसके विपरीत फल व सब्जियों में कोलेस्ट्रोल बिलकुल नहीं पाया जाता, अतः शाकाहार ही सर्वश्रेष्ठ है।"

इन डाक्टरों ने आगे लिखा है कि "अण्डे में नाइट्रोजन जैसी विषैली गैस तथा फ़ास्फ़ोरस एसिड की पर्याप्त मात्रा और चरबी होती है। इस कारण अण्डे शरीर में तेज़ाबी मादा पैदा करते हैं, जिससे शरीर में गैस की कई बीमारियां फूट पड़ती हैं।"

फ्लोरिडा विश्वविद्यालय (अमेरिका) के कृषि विभाग ने १९६७ में एक स्वास्थ्य बुलेटिन में बताया था "अण्डे में हानिप्रद विषाणु (वाइरस) होते हैं।"

केलीफ़ोर्निया के दो वैज्ञानिकों—डा० कैथरीन निम्मो तथा डा० जे० अमेन ने सिद्ध किया है—"अण्डे में कोलेस्ट्रोल नामक विष पाया जाता है, जो हृदय रोग का एक प्रमुख कारण है। अण्डे खाने से उच्च रक्त चाप पैदा होता है और पाचन गड़बड़ हो जाता है। यही नहीं, इससे गुर्दे में पथरी बन जाती है, तथा आमाशय, आंत और रक्त-नलिकाओं में घाव हो जाते हैं। आमाशय और आंतों के घाव तमाम रोगों के जीवाणुओं को रोग फैलाने का अवसर प्रदान करते हैं। घायल आंतों में पेचिश के कीटाणु पनपते हैं, अतः पेचिश के लिए भी अण्डों का सेवन उत्तरदायी है। अण्डों का सेवन करने वालों की रोगों से बचने की शक्ति क्षीण हो जाती है।"

एक प्रसिद्ध डाक्टर ई० वी० मेककालम ने Newer Knowledge of Nuitrition के पृष्ठ १७१ पर लिखा है, "अण्डों में कैलशियम की वहुत कमी होती है और कार्बो-हाइड्रेट्स तो होते ही नहीं। इस कारण यह बड़ी आंतों में जाकर सड़ांध मारते हैं और सड़ने वाले कीटाणुओं को वढ़ावा देकर भयंकर बीमारियों को पैदा करते हैं।"

उन्होंने इसी पुस्तक में पृष्ठ ३६६ पर अपना एक अनुभव लिखा है, "कुछ बन्दरों को जब अण्डे खिलाये गये तो उनके शरीर में सड़ांध पैदा करने वाले बैक्टीरिया पैदा होने लगे। वे वन्दर सुस्त हो गये। उन्होंने अपने सिरों को झुका दिया और वे बुद्धू से वन गये। उनका पेशाव रुक-रुक कर, सड़ कर व गहरे रंग का आने लगा। जब उन्हें ग्लुकोज़ दिया गया तब वे फिर ठीक हो गये। इस प्रकार जैसे शाकाहारी वन्दरों आदि पशुओं को अण्डे माफ़िक नहीं आते, उन्हें बीमार कर देते हैं, उसी प्रकार शाकाहारी मनुष्य के लिए भी अण्डे कभी माफ़िक नहीं आ सकते।"

अनेक डाक्टरों का यह अनुभव है कि जब पशुओं को अण्डों की सूखी सफ़ेदी खिलाई गई तो उनमें से कुछ को लकवा मार गया, कुछ को कैंसर हो गया और वहुतों को चर्म रोग हो गया। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया है कि अण्डे का सबसे हानिकारक भाग अण्डे की सफ़ेदी है।

लन्दन के एक वहुत प्रसिद्ध डाक्टर मि० हैग कहते हैं, "मांस में यूरिया और यूरिक एसिड नाम के दो वहुत ही भयानक विष पाये जाते हैं जो मनुष्य के शरीर में जाकर भयानक रोगों को उत्पन्न करते हैं।" उन्होंने लिखा है, "आगे लिखे प्रत्येक प्रकार के मांस की आधा

किलो मात्रा लें तो काड मछली में चार ग्रेन, यलीस मछली में छह ग्रेन, गाय की खाल में सात ग्रेन, गाय की पसली में आठ ग्रेन, सूअर की कमर तथा रान में आठ ग्रेन, तुर्की मुर्गी में आठ ग्रेन, चूज़े में नौ ग्रेन, गाय की पीठ तथा पीछे के अंग में नौ ग्रेन, गाय के भुने मांस में चौदह ग्रेन, गाय के यकृत में उन्नीस ग्रेन और मांस के रस में पचास ग्रेन यह भयंकर विष पाया जाता है। दालों में व वनस्पतियों में इस विष की मात्रा वहुत ही कम अर्थात् न के वरावर ही होती है। पनीर, दूध से वने पदार्थों, चावल व गोभी आदि में यूरिक एसिड विलकुल भी नहीं पाया जाता।"

यही डाक्टर आगे लिखते हैं, "जव यह विष मनुष्य के रक्त में मिल जाता है तव यह विष दिमाग़ी वीमारियां, हिस्टीरिया, सुस्ती, नींद का अधिक आना, सांस रोग, जिगर की खरावी, अजीर्ण रोग, शरीर में रक्त की कमी आदि वहुत सी वीमारियों को पैदा करता है। यह विष जव किसी गांठ या जोड़ में रुक जाता है तो वात रोग, गठिया वाय, नाक और कलेजे की दाह, पेट के विभिन्न रोग, शरीर के विभिन्न दर्द, मलेरिया, निमोनिया, इन्फ़्लुएंजा और क्षय रोग उत्पन्न करता है।"

डाक्टर हैग और आगे लिखते हैं, "मांस में कैलशियम की वहुत कमी होती है और कार्वोहाइड्रेट्स के नितान्त अभाव के कारण मांस पेट में जाकर सड़ता है और अण्डे की तरह यह भी सड़ांव पैदा करने वाले कीटाणुओं को वढ़ावा देता है, इससे गैस की भयंकर वीमारियां पैदा हो जाती हैं।"

डाक्टर जोशिया आल्डफ़ील्ड डी० सी०, एम० ए०,

एम० आर०, सी० एल० आर०, सी० पी० सीनियर फ़िज़ी-शियन मार्गरेट हॉस्पिटल, ब्रामले का भी यही अनुभव है कि मांस, मछली व अण्डे अप्राकृतिक भोजन हैं। इनसे शरीर में अनेक भयंकर बीमारियां जैसे कैंसर, क्षय, ज्वर, यकृत, मृगी, बात रोग, पादशोथ, नासूर आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

कोलगेट यूनिवर्सिटी (यू० एस० ए०) के एक वैज्ञानिक श्री ल्यार्ड ने अपने परीक्षणों के आधार पर लिखा है कि मांस में कैलशियम, कार्बोहाइड्रेट्स नहीं होते, इसलिए उसे खाने वाले चिड़चिड़े, क्रोधी, निराशावादी और असहिष्णु बन जाते हैं। शाकाहार में कैलशियम और कार्बोहाइड्रेट्स की मात्रा काफ़ी होती है, इसलिए शाकाहारी प्रसन्नचित्त, आशावादी, सहनशील व शान्तिप्रिय बनते हैं। कठिनाइयां उनके साहस और धैर्य को बंधाती हैं। वे नरक में भी स्वर्ग के विचार रखते हैं।

दो अमेरिकी डाक्टरों डा० ए० वाचमन और डा० डी० एस० बर्नस्टीन ने सिद्ध किया है कि मांसाहार से हड्डियां क्रमशः कमजोर होती हैं और गलने लगती हैं। शाकाहारियों की हड्डियां मांसाहारियों की अपेक्षा अधिक मजबूत होती हैं। डाक्टर अलेक्ज़ेंडर हैक ने इस तथ्य की पुष्टि की है।

इंग्लैण्ड के नगरों और गांवों का निरीक्षण करने के पश्चात् मि० किंग्सफ़ोर्ड और मि० हेनरी ने लिखा है, "प्राचीन काल में अंग्रेज लोग अत्यन्त बलिष्ठ, स्वस्थ, सुगठित शरीर वाले और अधिक परिश्रमी होते थे, परन्तु जबसे उनके भोजन में प्राकृतिक पदार्थों के स्थान पर मांस, मदिरा, अण्डे व मछली ने अधिकार कर लिया है तबसे

उनका स्वास्थ्य व शक्ति धीरे-धीरे घट रही है। पच्चीस वर्ष की अवस्था में ही उनके शरीर का अधःपतन हो जाता है। यह भी देखने में आया है कि मांसाहारी परिवारों के लड़के-लड़कियों का स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ होता है। उनमें हृदयरोग व कैंसर की शिकायतें पाई गईं।" अपनी प्रजा के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर इंगलैंड की सरकार की ओर से ब्रिटिश बोर्ड आफ़ एग्रीकल्चर ने समाचार पत्रों द्वारा एक लेख से अपनी अंग्रेज प्रजा को चेतावनी दी थी —"मांसाहार छोड़कर उसके बदले दूध, पनीर और मसूर की दाल का प्रयोग करो, जो मांस के समान शरीर में मांस पैदा करते हैं और मूल्य में सस्ते हैं। शाक और फल-फूलादि का अधिक प्रयोग करो।"

मांसाहार के भयंकर परिणामों और ऐसी चेतावनियों के कारण पश्चिमी देशों में सैंकड़ों शाकाहारी सोसाइटियों की स्थापना हुई है और वहां के निवासी अधिकाधिक संख्या में शाकाहार को अपनाते जा रहे हैं। कहा जाता है कि केवल अमरीका में ही चार करोड़ व्यक्तियों से अधिक शाकाहारी हैं, और यह संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है।

फ्रांस के एक विद्वान श्री किंग्सन फ़ोर्ड ने लिखा है—"यहां के लोगों का स्वास्थ्य और शरीर का बल पाशविक भोजन के कारण दिन-प्रति-दिन गिरता जा रहा है।" अब वहाँ पर भी लोग शाकाहार की ओर बढ़ रहे हैं।

किम्बरलैंड के देहातों की अवस्था पर मि० स्माइल ने लिखा है—"जो व्यक्ति दूध, पनीर, फल, रोटी और सब्जियों का प्रयोग करते हैं वे मांस-मदिरा का सेवन करने वालों से अधिक स्वस्थ, बलवान और परिश्रमी पाये जाते हैं।"

मैक्सिको के निवासी साधारण अनाज की रोटियों और फलों का सेवन करते हैं, परन्तु वे शरीर से इतने शक्तिशाली होते हैं कि मांस का सेवन करने वाले मजदूर उनका किसी प्रकार भी मुकावला नहीं कर सकते। इन शाकाहारियों की शक्ति को देख कर आश्चर्य होता है।

माल्टा के निवासी वहुत मोटे-ताजे होने पर भी खूब वलवान होते हैं, क्योंकि वे लोग सब्जी, फल व रोटी का सेवन करते हैं।

अमरीका के विद्वान श्री चैंस ने स्मरना निवासियों के सम्वन्ध में लिखा है कि वे वहुत मजवूत व वलवान होते हैं। वहां का एक-एक आदमी पांच-पांच मन वज़न तक का बोझा उठा सकता है इसका कारण यही है कि वे लोग फल और वहुत साधारण भोजन करते हैं।

कप्तान सी० एफ० ने हस्तपानियां में मूर के मजदूरों की दशा देखकर लिखा है कि इनके शरीर में शक्ति होती है और वे वड़ा भारी वोझ उठाते हैं। कारण कि वे लोग गेहूं की रोटियों के साथ अंगूर खाते हैं।

डा० ब्रुक ने नार्वे के लोगों के विषय में लिखा है कि वे सदा प्रसन्नचित्त, दीर्घायु और स्वस्थ पाये जाते हैं कारण कि वे लोग मांस व अण्डों से वड़ी सख्त घृणा करते हैं।

यूनान के एक समाचारपत्र ने लिखा है कि जवसे यहां के निवासियों ने शाकाहार छोड़कर मांस-मदिरा का सेवन शुरू कर दिया है तवसे यूनान के लोग सुस्त और निकम्मेपन के लिए प्रसिद्ध हो रहे हैं। इन लोगों को चाहिए कि स्वास्थ्य के लिए मांस-मदिरा रहित भोजन, हरी सब्जी, फल, मेवे, अनाज व दूध का सेवन करें।

डाक्टर आनन्द निमल सूरिया ने खोज के पश्चात्

लिखा है कि मांस पशु-पक्षियों को तड़पाकर मारने पर मिलता है। जब पशु-पक्षियों को निर्दयता से मारा जाता है तब वह तड़पते हैं, दुखी होते हैं और भयभीत होते हैं। ये बुरी भावनाएं उनके शरीर में रासायनिक परिवर्तन करके उनके मांस व खून को अम्लोत्पादक बना देती हैं। इसके अतिरिक्त मरे हुए पशुओं की रक्तनली के विषैले पदार्थ प्रोटीन को गन्दा कर देते हैं। डाक्टर साहब आगे लिखते हैं कि उन्होंने मरे हुए व मारे हुए पशुओं के मृत शरीरों को Microscope से देखा है, जिससे मालूम पड़ा है कि उनकी बड़ी आंतें विषैले कीटाणुओं से भरी पड़ी हैं। मांस को उबालने पर भी खुर्दबीन से परीक्षण करने पर उसमें बहुत सारे भयंकर कीटाणु पाये गये, जो शरीर में सैंकड़ों बीमारियां पैदा करते हैं। इसलिए शुद्ध व बढ़िया प्रोटीन तो दालों, अनाजों व दूध में ही पाया जाता है।

यहां एक बात और विचारणीय है। मांसाहारी व्यक्ति केवल शाकाहारी पशुओं—यथा भेड़, बकरी, गाय, ऊंट, मछली, मुर्गे आदि का ही मांस खाते हैं। मांसाहारी पशुओं—यथा शेर, चीते, भेड़िये आदि का मांस कोई नहीं खाता, क्योंकि इन मांसाहारी पशुओं का मांस विषैला होता है। इस तथ्य से भी यह स्पष्ट है कि मांसाहार हमारे शरीर में विष पैदा करता है, जबकि शाकाहार हमारे शरीर को शुद्ध रखता है।

'वर्ल्ड हैल्थ आर्गेनाइजेशन' की विशेष समिति ने सर्वेक्षण द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि २२ विकसित और समृद्ध देशों में जहां कि मुख्य रूप से मांसाहार किया जाता है, प्रति एक लाख व्यक्तियों में ४०० से अधिक व्यक्ति हृदय रोगों से मरते हैं। यह संख्या फ़िनलैण्ड में सबसे

अधिक अर्थात् ४२२ है; जबकि एशियाई देशों में अपेक्षाकृत बहुत कम है। जापान में १ लाख व्यक्तियों में सिर्फ़ ५१ व्यक्ति हृदय रोगों से मरते हैं। सौभाग्य से यह संख्या भारत में अभी ४२ तक ही पहुंची है और निश्चय ही इसका श्रेय भारत की शाकाहारी पद्धति को है।

इन कारणों के अतिरिक्त सर्वेक्षणों से यह तथ्य भी प्रकाश में आया है कि जिन विकसित और समृद्ध देशों में जितनी अधिक मोटर कारें हैं और वहां के निवासी जितनी अधिक सिगरेटें पीते हैं, दिल के दौरे के रोगी वहां उतने ही अधिक हैं।

जर्मन के एक प्रसिद्ध विद्वान मि० हैकल ने लिखा है कि जहां तक परीक्षा से मालूम हुआ है मनुष्य और वनमानुष के शरीर की बनावट आपस में मिलती है। हमारे शरीर की भांति उसके भी हड्डियाँ व नसें होती हैं। मनुष्य के आमाशय में पाचन क्रिया के लिए जो विशेषता पाई जाती है वही वनमानुष में भी होती है। वनमानुष फल और शाक-सब्जी खाते हैं अतः मनुष्य का भी यही आहार होना चाहिए। इसी कारण मनुष्य प्राकृतिक रूप से शाकाहारी है, मांसाहारी नहीं।

फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पियर गेसेण्डी का कहना है कि मनुष्य के जीवन का पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् मैं यह निर्णय दे सकता हूं कि मनुष्य शाकाहारी प्राणी है।

बहुत से अन्य विद्वानों, डाक्टरों, वैज्ञानिकों तथा शरीर-शास्त्र के ज्ञाताओं ने विचार व्यक्त किए हैं कि मनुष्य के दाँत, नाखून, शारीरिक ढांचा, जबड़ा, आंतें तथा पाचन यन्त्र और उसके खाने-पीने के ढंग को देखकर निर्विवाद कहा जा सकता है कि मनुष्य शाकाहारी प्राणी

है; यहां यह बता देना उपयोगी होगा कि प्रकृति ने शाकाहारी प्राणियों को लगभग १५ मीटर लम्बी आंत प्रदान की है जबकि मांसाहारियों की आंत छोटी होती है।

एक बात और, जो व्यक्ति हृदयहीन होकर एक निर्बल और मूक पशु की गर्दन पर छुरी चलाता है, उसको तड़प-तड़प कर मरते हुए देखता है, वह इतना निर्दयी हो जाता है कि वह मनुष्य को भी पशु से अधिक नहीं समझता और स्वार्थवश मनुष्य की हत्या करते हुए भी उसको कोई झिझक नहीं होती। इसी कारण मांसाहार की अधिकता के साथ-साथ मनुष्यों की हत्याएं भी बढ़ती जा रही हैं।

एक प्रश्न यह उठता है कि हम मांसाहार क्यों करें ? जब हम अनाज, फल, सब्जी, मेवे उत्पन्न कर सकते हैं तब मांसाहार का आधार ही क्या रह जाता है ? जिस प्रदेश में अनाज का उत्पादन कम होता है या नहीं होता है, आज के युग में वहां भी दूसरे स्थानों से बहुत आसानी से अनाज भेजा जा सकता है। फिर जहां पर अनाज प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होता है वहाँ का तो कहना ही क्या है। क्या हम केवल जिह्वा के स्वाद के लिए निर्बल व मूक प्राणियों की हत्या करते रहें ? परन्तु मांस स्वयमेव में इतना स्वादिष्ट नहीं होता, उसमें स्वाद तो घी व मसालों द्वारा पैदा किया जाता है। अतएव हम शाकाहार को भी बहुत अधिक स्वादिष्ट बना सकते हैं। फिर समझ में नहीं आता कि मांसाहार करने में क्या तुक व अच्छाई है ?

इस पुस्तक के अन्त में हम विभिन्न पदार्थों के पौष्टिक तत्वों का तुलनात्मक चार्ट दे रहे हैं, जिससे तत्काल पता चल जाता है कि अनाज, फल व मेवे आदि मांस, मछली व अण्डों से कितने अधिक शक्तिवर्द्धक व गुणकारी हैं।

# हमारा भोजन

अब हम अपने प्रति दिन के भोजन के सम्बन्ध में कुछ विचार करेंगे। भोजन का हमारे स्वास्थ्य व अहिंसा धर्म से बहुत गहरा सम्बन्ध है। यदि हम अपनी प्रकृति के अनुकूल, शुद्ध व ताज़ा भोजन सेवन करेंगे तो हमारा स्वास्थ्य ठीक रहेगा। इसी प्रकार यदि हम भोजन के सम्बन्ध में उचित सावधानी वरतें तो हम बहुत सी अनावश्यक हिंसा से भी बचे रहेंगे। अधिकतर ऐसा होता है कि भोजन को, आँखों को सुन्दर दिखने वाला और जिह्वा को स्वादिष्ट लगने वाला बनाने के लिये हम अनजाने में ही उसके पोषक तत्त्व नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार हम कई बार शाकाहारी भोजन को भी मांसाहारी बना लेते हैं।

## हम भोजन क्यों करते हैं ?

भोजन करने का मुख्य उद्देश्य हमारी भूख की तृप्ति करके हमें अपने कार्य करने और जीवित रहने के लिये पर्याप्त शक्ति प्राप्त करना है। जो व्यक्ति जितना अधिक शारीरिक कार्य करता है उसकी उतनी ही अधिक शक्ति नष्ट होती है और उस नष्ट हुई शक्ति को पूरा करने के लिये उसको उतने ही अधिक भोजन की आवश्यकता होती है। इसीलिए जो व्यक्ति अधिक शारीरिक कार्य करते हैं वे अधिक मात्रा में भोजन सेवन करते हैं।

परन्तु हम भोजन सेवन करने के इस मूल उद्देश्य को भूल गये हैं। हम केवल भूख शान्त करने के लिये ही नहीं,

अधिकतर स्वाद लेने के लिये ही दिन भर कुछ-न-कुछ खाते रहते हैं। इसीलिये हम चाट, पकोड़ी, मिठाई आदि खाते रहते हैं और कोकाकोला, चाय, काफ़ी आदि पीते रहते हैं। अनेकों बार ऐसा होता है कि हमको भूख नहीं होती, फिर भी हम भोजन कर लेते हैं; क्योंकि भोजन करने का समय जो होता है। हमारी आंखों को सुन्दर लगे और हमारी जिह्वा को स्वादिष्ट लगे, इसलिये हम भोजन को विभिन्न प्रकार से विकृत कर देते हैं। यह सब करते हुए हम यह नहीं सोचते कि इस प्रकार के विकृत पदार्थ सेवन करने और विना भूख ही सेवन करने से हमारे स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा? इसका स्वाभाविक परिणाम यही होता है कि हम अपना स्वास्थ्य खराव कर लेते हैं और फिर औषधियों के भरोसे ही अपना जीवन विताते हैं। भोजन के सम्बन्ध में की गई इस प्रकार की अनियमितता के परिणामों को देखते हुए प्राकृतिक चिकित्सक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि संसार में भोजन न मिलने (अर्थात् भुखमरी) से जितने व्यक्ति मरते हैं, उनसे सैंकड़ों गुने अधिक व्यक्ति विकृत, अप्राकृतिक तथा आवश्यकता से अधिक भोजन के सेवन से मरते हैं। उनका यह भी कहना है कि दुर्घटनाओं को छोड़कर कम-से-कम पचहत्तर प्रतिशत रोग पेट की खरावी के कारण से होते हैं और पेट की खरावी हमारे भोजन की गलत आदतों का ही परिणाम है।

हम आपके सामने कुछ तथ्य रखते हैं :—

यदि हम समुचित देखभाल रखें तो हम गेहूं को साल-डेढ़ साल तक वहुत अच्छी दशा में रख सकते हैं।

यदि हम गेहूं का आटा पिसवा लें तो उस आटे को अधिक समय तक अच्छी दशा में नहीं रख सकते। डेढ़-दो

महीने में ही उसके गुण नष्ट हो जायेंगे और वह खाने योग्य नहीं रहेगा।

यदि हम आटे का भोजन, मिठाई आदि बना लें तो वे खाद्य पदार्थ अधिक-से-अधिक चार-पांच दिन सेवन करने योग्य रह सकते हैं।

यदि हम आटे में पानी मिलाकर उसको उसनकर रख दें तो वह कुछ घण्टों के बाद ही खराब होने लगेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी प्राकृतिक दशा में गेहूं बहुत समय तक ठीक रह सकता है। परन्तु जैसे-जैसे हम उसका रूप बदलते जाते हैं, उसकी ठीक अवस्था में रहने की अवधि तथा उसके गुण कम होते जाते हैं।

इसी प्रकार यह भी एक सर्वविदित तथ्य है कि कोई खाद्य पदार्थ जब बिलकुल सादा व अकेला सेवन किया जाता है तो वह जल्दी ही पच जाता है और शरीर को पोषण भी अधिक देता है। परन्तु यदि हम कई खाद्य पदार्थ एक साथ मिलाकर खायें तो वे गरिष्ठ हो जाते हैं, देर में पचते हैं और उनके पोषक तत्त्वों में भी कमी हो जाती है। इसीलिए वैद्य और डाक्टर निर्बल और रोगी व्यक्तियों को सादा भोजन करने की राय देते हैं।

इन तथ्यों को दृष्टि में रखकर यदि हम अपने प्रतिदिन के भोजन की आदतों में आवश्यक सुधार कर लें तो हम कम व्यय में अधिक पोषक व स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन प्राप्त कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में हमें निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

हमारे शरीर की भोजन सम्बन्धी आवश्यकताएं चौबीस घण्टों में एक बार भोजन करने से ही पूरी हो सकती हैं। फिर भी, जो व्यक्ति ऐसा करने में असमर्थ हों वे दिन में

दो वार भोजन ले सकते हैं। प्रातः सूर्य निकलने के एक घण्टे वाद से लेकर संध्या को सूर्य छिपने से एक घण्टा पहले तक हमको अपना भोजन कर लेना चाहिए। इस समय के अतिरिक्त अन्य समय में तथा विना भूख लगे भोजन कभी नहीं करना चाहिए। जव व्यक्ति स्वस्थ होता है तो उसको अपने आप ही खुलकर भूख लगती है। खुल-कर भूख न लगना पेट में किसी-न-किसी प्रकार की गड़वड़ी का संकेत है। हमको पेट भरकर तथा ठूंस-ठूंसकर कभी नहीं खाना चाहिए। सदैव ही भूख से एक रोटी कम खानी चाहिए। चौवीस घण्टों में दो वार से अधिक भोजन करने, ठूंस-ठूंसकर खाने तथा विना भूख भोजन करने का परिणाम अपने पैसे को व्यर्थ खोना और वदले में वीमारी मोल लेने के समान है। कुछ दिन हुए एक पत्रिका में पढ़ा था कि पटना में एक ऐसा परिवार है, जिसके सदस्य कई वर्ष से, विना भोजन के, केवल पानी पीकर ही, अपना जीवन-यापन कर रहे हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि जीवित व स्वस्थ रहने के लिये अधिक भोजन करना आवश्यक नहीं है।

हमारी एक गलत आदत यह भी है कि हम भोजन गरम-गरम खाते हैं और पानी ठण्डा पीते हैं। इसके विप-रीत हमको चाहिए कि भोजन ठण्डा खायें और पेय पदार्थ गरम-गरम पियें। तात्पर्य यह है कि दाल, रोटी, सब्जी आदि ठण्डे (फ्रीज़ में रखकर नहीं) सेवन करने चाहिएं और पानी, दूध आदि सुहाते हुए गरम पीने चाहिएं। इस प्रकार भोजन सेवन करने से हम स्वस्थ रहेंगे और वहुत से रोगों से भी वचे रहेंगे।

जहां तक सम्भव हो खाद्य पदार्थों को उनके प्राकृतिक रूप में ही सेवन करना चाहिए। केवल स्वादिष्ट वनाने

और उनका रूप-रंग सुन्दर बनाने के लिये ही हमें इन खाद्य पदार्थों को विकृत नहीं करना चाहिए। अग्नि पर पकाने और उनमें घी, मसाले व रंग डालने से खाद्य पदार्थों के पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं और वे केवल जले हुए कोयले के समान रह जाते हैं। अपनी प्रकृति, रुचि व मौसम के अनुकूल हमको अधिक-से-अधिक मात्रा में फलों व सब्जियों का सेवन करना चाहिए। जो फल व सब्जी अपनी प्राकृतिक दशा में ही खाई जा सकें उनको न तो पकाना चाहिए और न उनमें मसाले डालने चाहिएं।

मांस, अण्डा तथा मदिरा, अफ़ीम, चरस, भंग जैसे मादक द्रव्य और बीड़ी, सिगरेट, हुक्के आदि का सेवन तो हमें भूलकर भी नहीं करना चाहिए। ये सब पदार्थ इनके सेवन करने वालों के विवेक को हरने के साथ-साथ उनको अनेकों रोग लगा देते हैं। इनके सेवन से हिंसा का दोष तो लगता ही है। इसी प्रकार पुराने अचार, मुरब्बे, खमीरे तथा शहद, आसव, सिर्का, पनीर, खमीर, कई दिनों की बासी मिठाई आदि पदार्थ भी हमें नहीं खाने चाहिएं। क्योंकि इन पदार्थों में निरन्तर ही सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। ये सूक्ष्म जीव चाहे आंखों से दिखाई न दें, परन्तु यदि बहुत शक्तिशाली सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र से देखें तो ये जीव हमको दिखाई दे जायेंगे। इसलिए इन पदार्थों के सेवन से हिंसा का दोष लगता है और कभी-कभी ये हमारे स्वास्थ्य को हानि भी पहुंचा देते हैं।

हमको वनस्पति घी का प्रयोग बिलकुल भी नहीं करना चाहिए। यह मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। तेलों के रंग और उनकी गन्ध दूर करने के लिए तथा उनको जमाने के लिए जो रसायन इन तेलों में मिलाये जाते

हैं और जो रासायनिक प्रक्रिया उन पर की जाती है, उसके कारण वे मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाते हैं। यदि हम शुद्ध घी का प्रबन्ध नहीं कर सकें तो बनस्पति घी के स्थान पर हमें शुद्ध तेलों का प्रयोग करना चाहिए। शुद्ध तेल हमारे स्वास्थ्य को हानि भी नहीं पहुंचाते और पौष्टिक भी होते हैं।

इसी प्रकार मिलों की बनी हुई दानेदार चीनी भी ——ों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है, क्योंकि ़रने के लिए इसमें भी हानिकारक रसायन मिलाये । आजकल बढ़ता हुआ मधुमेह (शुगर की बीमारी) ीनी की देन है। इसके स्थान पर हमको शुद्ध गुड़ : का सेवन करना चाहिए।

टेन के बीस पोषक तत्व विशेषज्ञ डाक्टरों ने चीनी न्ध में जो रिपोर्ट पेश की है, वह उन लोगों की ख़ोल देने वाली है जिन्हें चीनी खाने का बेहद शौक़ : जो उसे पोषक तत्व समझते हैं। मधुमेह के डर से ास आयु के बाद चीनी कम खानी चाहिए, यह तो ौर से कहा जाता था; परन्तु वह शरीर में विभिन्न को जन्म देने वाली तथा स्वास्थ्य पर घातक प्रहार वाली है, इसका पता इस रिपोर्ट से ही चलता है। अनुसार चीनी मोटापा बढ़ाने तथा गठिया, अल्सर, ;, हृदय-रोग और त्वचा तथा दांतों के रोग पैदा के सिवा और कुछ नहीं करती। उनका यह कहना यदि आज का आदमी अधिक चीनी खाने की आदत ि, तो अब से अधिक स्वस्थ रह सकता है।

ाजकल बाजारों में पिसा हुआ नमक मिलता है। यह ास्थ्य के लिये हानिकारक है क्योंकि नमक को साफ़

करने के लिए इसमें भी ऐसे ही स्वास्थ्य के लिए हानि-कारक रसायन मिलाये जाते हैं।

बहुत से उच्च कोटि के डाक्टर तो इन पदार्थों को सफ़ेद विष (White Poison) कहते हैं, जो मनुष्यों की तिलतिल करके जान ले लेते हैं।

इसी प्रकार मिलों में साफ किये और पालिश किये हुए चावलों के पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। अतः जहाँ तक सम्भव हो हमें हाथ से ही साफ़ किये हुए चावलों का सेवन करना चाहिए। गेहूं के मैदे में भी पोषक तत्व नहीं रहते। इसके अतिरिक्त इस मैदे से बने हुए खाद्य पदार्थ गरिष्ट हो जाते हैं और हमारे पेट को खराब करते हैं। पूरा पोषण प्राप्त करने के लिये हमें बिना छाने चोकर सहित आटे का ही प्रयोग करना चाहिए।

चाय, काफ़ी, कोका कोला आदि पेय पदार्थ भी हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। शुरू-शुरू में तो मनुष्य, फ़ैशन समझ कर मित्रों के साथ ऐसे कई तरह के पेय पदार्थ पीते हैं, परन्तु कुछ दिन के पश्चात् ही, इनमें अल्कोहल मिले होने के कारण, वे इनके आदी हो जाते हैं। कुछ दुकानदार भी अपना माल बेचने के लिये इन पेय पदार्थों में कोई मादक द्रव्य डाल देते हैं, जिससे ग्राहकों को उन्हीं दुकानदारों के बनाये हुए पेय पदार्थ पीने का चस्का लग जाता है, जो अन्ततः स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते हैं।

बाजार के पिसे हुए मसाले व आटा तथा बाजार की बनी हुई मिठाई, चाट, पताशे आदि भी खाने योग्य नहीं होते। क्योंकि दुकानदार अधिक से अधिक लाभ कमाने के लिये, इन वस्तुओं को बनाने के लिये, घटिया से घटिया

खाद्य पदार्थ प्रयोग में लाते हैं, क्योंकि वे सस्ते मिल जाते हैं। वे ये वस्तुएं ऐसे गन्दे तरीकों से और ऐसे गन्दे स्थानों पर तैयार करते हैं कि देखने में भी ग्लानि होती है। इसके साथ-साथ बाजार के पिसे हुए मसालों व अन्य खाद्य पदार्थों में मिलावट भी बहुत पाई जाती है। इनमें लकड़ी का बुरादा, पत्थर का चूरा, घोड़े की लीद, पीली मिट्टी आदि जैसे हानिकारक पदार्थ मिलाये जाते हैं। खाने के तेलों में खनिज तेल मिला देते हैं। ये पदार्थ हमारे स्वास्थ्य को नष्ट कर देते हैं और हमारे जलन्धर, पेचिश, लकवा आदि जैसे भयानक रोग पैदा कर देते हैं। इस प्रकार के मिलावटी खाद्य पदार्थ खाने से प्रति वर्ष हजारों व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। अतः जहां तक सम्भव हो हमें घर पर ही शुद्ध, साबुत खाद्य पदार्थ लाकर उनको साफ़ करके स्वयं ही पीस-कूट कर प्रयोग करने चाहिएं।

हमें सप्ताह में कम से कम एक दिन का उपवास रखना चाहिए। उस दिन केवल गुनगुना-गुनगुना गरम पानी पीना चाहिए। ऐसा करने से सप्ताह भर में जो गन्दगी हमारे पेट में इकट्ठी हो जाती है वह साफ़ हो जाती है। यदि हम पूरे दिन का उपवास न भी कर सकें तो सप्ताह में एक समय का भोजन तो अवश्य ही छोड़ देना चाहिए।

भोजन सेवन करने के सम्बन्ध में हमें इस सूत्र से काम लेना चाहिए। जिस प्रकार हम अपने सेवक को कम-से-कम वेतन देकर उससे अधिक से अधिक काम लेना चाहते हैं, उसी प्रकार हमको भी अपने पेट को कम-से-कम भोजन देकर अपने शरीर से अधिक-से-अधिक काम लेना चाहिये। इस सूत्र पर चलने से हम कदाचित् ही बीमार पड़ें।

कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि संसार में जितने पाप

होते हैं वे अधिकतर पेट की खातिर होते हैं। परन्तु यह बात मिथ्या है। ऊपर लिखे अनुसार यदि हम अपनी भोजन सम्बन्धी आदतें सुधार लें तो कम-से-कम पेट भरने के लिये हमें कोई पाप नहीं करना पड़े। हम ईमानदारी से ही अपने और अपने आश्रितों के भरण-पोषण योग्य कमा सकते हैं। पेट तो साधारण और सस्ते भोजन से भी भर सकता है और मूल्यवान पकवानों से भी। पेट कभी नहीं कहता कि मुझे भांति-भांति के स्वादिष्ट भोजन खिलाओ। इसके विपरीत गरिष्ठ भोजन के सेवन से तो पेट को उसको पचाने के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है। अधिकांश में गरिष्ठ भोजन के सेवन से पेट खराब भी हो जाता है। वास्तविक दोषी तो हमारी तृष्णा और स्वाद लेने की लालसा है। यदि हम इनको अपने वश में कर लें तो अपने जीवन निर्वाह के लिये हमें कोई भी अनुचित साधन न अपनाने पड़ें। ग्रास जब तक मुंह में नहीं जाता तब तक हमें भोजन के स्वाद का पता नहीं चलता और ग्रास के गले से नीचे उतरने के पश्चात् भी भोजन के स्वाद का प्रश्न नहीं उठता। इस जिह्वा के क्षण भर के स्वाद के लिये ही हमें सब उचित व अनुचित कार्य करने पड़ते हैं। इसलिये यदि हमें सुख और शान्ति से जीना है तो हमें अपनी जिह्वा को अपने वश में रखना चाहिये।

**खाद्य पदार्थ खराब क्यों होते हैं?**

सारे संसार में बहुत ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणु भरे हुए हैं, जिनको हम बैक्टीरिया (Bacteria) भी कह सकते हैं। अनुकूल परिस्थितियां मिलते ही यह बहुत शीघ्रता से बढ़ते हैं। यदि हमारे खाद्य पदार्थों में इन बैक्टीरिया जीवों का प्रवेश हो जाये तो ये बहुत शीघ्रता से और बहुत बड़ी

पाने के लिए सबसे प्रथम दृढ़ निश्चय की आवश्यकता है। जब तक हममें प्रबल इच्छा-शक्ति–दृढ़ निश्चय–नहीं होगा, तब तक हम कुछ भी नहीं कर सकेंगे। एक बार किसी भी बुरी आदत को छोड़नें का दृढ़ निश्चय करने के बाद हमें उस पर प्रत्येक दशा में दृढ़ रहना चाहिए, चाहे हमारे मार्ग में कितनी भी रुकावटें व प्रलोभन क्यों न आयें। बुरी आदतों को छोड़ने का सबसे सरल उपाय यह है कि हमें कोई सीमा बांध लेनी चाहिए। मान लिया कोई व्यक्ति एक दिन में लगभग बीस सिगरेट पीता है। वह सिगरेट पीना छोड़ना चाहता है। उसको यह निश्चय कर लेना चाहिए कि मैं आज पन्द्रह सिगरेट ही पीऊँगा। वह गिन-कर पन्द्रह सिगरेट ही अपने पास रखे, न तो और खरीद कर पिये और न किसी अन्य व्यक्ति के देने पर ही पिये। जब भी उसका मन सिगरेट पीने को हो, वह तभी यह सोचे कि आज तो केवल पन्द्रह सिगरेट ही पीनी हैं, इस-लिए थोड़ी देर बाद पिऊँगा। इसके बदले वह अपने मुँह में सौंफ, इलायची, सुपारी, मीठी गोली आदि ऐसी ही कोई वस्तु डाल ले। ऐसा करने से वह दिन भर में पन्द्रह के बजाय दस, बारह सिगरेट ही पी सकेगा। इसी प्रकार सीमा कम करते रहने से कुछ ही दिनों में उसकी यह बुरी आदत छूट जायेगी। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति बाजार की बनी हुई चाट, पकौड़ी, मिठाई आदि छोड़ना चाहे तो उसके लिए भी यही प्रयोग किया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति अपने भोजन को नियमित व सीमित करना चाहे तो भी उसको इसी प्रयोग पर चलना चाहिए। इस प्रकार दृढ़ निश्चय करने से और इस प्रयोग पर चलने से व्यक्ति अपनी पुरानी से पुरानी बुरी आदतों को छोड़ सकता है।

# छोटे-छोटे रोग

आज हमारी एक बुरी आदत यह भी बन गयी है कि हम तनिक-सा भी कोई रोग, जैसे सिर दर्द, पेट दर्द, हलका बुखार, जुकाम आदि होने पर या तो डाक्टरों के पास भागे जाते हैं या कोई पेटेण्ट औषधि खा लेते हैं। परन्तु यह आदत ठीक नहीं है। इस प्रकार दवाइयों का सेवन करते रहने से हम अपने शरीर की, रोग के आक्रमण को रोकने तथा रोग हो जाने पर उस रोग से लड़कर उसे दूर करने की, जो प्राकृतिक शक्ति है, उसको क्षीण करते रहते हैं। और अन्ततः यह प्राकृतिक शक्ति इतनी क्षीण हो जाती है कि हमारा जीवन केवल औषधियों पर ही निर्भर होकर रह जाता है। एक बात और भी है, आजकल कुछ एलोपैथिक दवाइयाँ ऐसी बन रही हैं कि यदि कोई व्यक्ति थोड़े दिनों तक उस दवाई को लेता रहे, तो वह दवाई उसके लिये प्रभावहीन हो जाती है और फिर बीमार पड़ने पर वह व्यक्ति उस दवाई से ठीक नहीं हो पाता। उसको और भी अधिक शक्ति (Potency) की दवाई लेनी पड़ती है, और फिर कुछ दिन बाद उससे भी अधिक शक्ति की। इस प्रकार अन्ततः एक दिन ऐसा आ जाता है जब उस व्यक्ति का रोग लाइलाज हो जाता है। कुछ औषधियां (Wonder Drugs) तो इतनी अधिक शक्तिशाली होती हैं कि वे जीवन में केवल एक बार ही ली जा सकती हैं। यदि एक बार वह औषधि सेवन कर ली, और फिर दुबारा बीमार हो गये तो कोई भी औषधि, रोगी पर अपना प्रभाव नहीं दिखा

सकती। यदि हमको ऐसी कठिन परिस्थितियों से बचना है तो हमें छोटे-छोटे रोगों के लिए औषधियों पर निर्भर रहना छोड़ना होगा। तथ्य यह है कि आकस्मिक दुर्घटनाओं को छोड़कर कम-से-कम पचहत्तर प्रतिशत रोग ऐसे हैं जो हमारे गलत खान-पान और गलत रहन-सहन के कारण से ही होते हैं। यदि हम अपना खान-पान और रहन-सहन अपनी प्रकृति तथा देश व काल के अनुकूल रक्खें तो हमें रोगों के आक्रमण का कोई भय नहीं रहेगा। साधारण रोग होने पर हमको, दो-चार दिन के लिये, अपने खान-पान में थोड़ी सावधानी वरत लेनी ही पर्याप्त है। हमको यह याद रखना चाहिए कि ये छोटे-छोटे रोग प्रकृति की ओर से चेतावनी होते हैं कि हम गलत दिशा में जा रहे हैं। यदि हमने इन चेतावनियों पर ध्यान नहीं दिया तो हम बड़े रोगों के चंगुल में फँस जायेंगे। सब से बढ़िया औषधि तो यह है कि तनिक-सी तवियत खराब होते ही हम एक समय का, एक दिन का अथवा दो दिन का भोजन छोड़ दें और इस अवधि में साधारण गुनगुना पानी पीते रहें। उस गरम पानी में नींबू का रस निचोड़ लें, तो और भी अधिक अच्छा रहे। ऐसा करने से पेट में जो भी गन्दगी इकट्ठी हो गयी है, वह साफ़ हो जायेगी और पेट को भी एक-दो दिन के लिये आराम मिल जायेगा। यदि ऐसा करने से भी पेट साफ़ न हो, तो हमें गरम पानी का एनीमा ले लेना चाहिए। जुलाब की दवाई लेना अच्छा नहीं होता। इसके साथ-साथ दो-चार दिन के लिये हम अपने आहार में भी कुछ परिवर्तन कर सकते हैं। इस आसान, बिना पैसे के और विल्कुल सुरक्षित इलाज के बजाय हम जरा-सी तवियत खराब होने पर ही, पेट को साफ करने के वजाय,

तरह-तरह की दवाइयों के रूप में और भी अधिक विष व गन्दगी पेट में भरते रहते हैं, जिसका परिणाम हम सबके सामने है। आपने यह अवश्य देखा होगा कि जो व्यक्ति प्रकृति के अनुकूल चलते हैं, वे अधिकांश में स्वस्थ ही रहते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति प्रकृति के प्रतिकूल चलते हैं और औषधियों पर निर्भर करते हैं, वे सदैव रोगी ही रहते हैं।

वनों में स्वच्छन्द व स्वतन्त्र विचरने वाले पशु-पक्षियों को किसी ने कदाचित् ही कभी बीमार देखा हो। वे अपनी प्रकृति के अनुकूल ही भोजन सेवन करते हैं। प्रथम तो वे कभी बीमार ही नहीं होते; यदि कोई बीमार हो भी जाता है तो वह भोजन छोड़ देता है, जिससे वह जल्दी ही ठीक हो जाता है। इसके विपरीत पालतू पशु-पक्षियों को अपना भोजन स्वयं चुनने की स्वतन्त्रता नहीं होती, न वे खुली वायु में विचरण ही कर सकते हैं। जिस प्रकार भी और जहां भी उनके स्वामी उनको रखते हैं, उन्हें रहना पड़ता है। फलस्वरूप वे रोगी होते हुए देखे जाते हैं।

पिछले कुछ वर्षों से विटामिनों की बहुत चर्चा हो रही है। किसी भी रोगी को देख कर डाक्टर तुरन्त कह देते हैं कि इस रोगी को अमुक विटामिन की कमी है और फिर डाक्टर उस रोगी को कृत्रिम विटामिन की गोलियां सेवन कराते हैं। परन्तु आधुनिक अनुसन्धानों से पता चला है कि अधिक मात्रा में कृत्रिम विटामिन सेवन करने से हानि की सम्भावना हो सकती है। हमें कृत्रिम विटामिन के बजाय विटामिनयुक्त खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

डाक्टर गर्भवती महिलाओं को शक्तिवर्द्धक औषधियां और कृत्रिम विटामिन सेवन कराते हैं। परन्तु आधुनिक

शोधों से पता चला है कि गर्भ स्थिति के प्रारम्भ के तीन चार महीनों में शक्तिवर्द्धक औषधियां (Tonics) और कृत्रिम विटामिन सेवन करने से गर्भस्थ शिशु के शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना रहती है और उसके शरीर में तरह-तरह की विकृतियाँ आ सकती हैं।

आज कल जुकाम-खांसी हो जाने पर पेन वाम लगाने का चलन वहुत बढ़ गया है। अमेरिका के हार्वर्ड विश्व-विद्यालय के वैज्ञानिकों ने पेन वाम लगाने से होने वाली प्रतिक्रिया पर शोध की है। इस सम्वन्ध में डाक्टर गेरी हूवर ने वताया है, "चूहों पर पेन वाम का प्रयोग करने से पता चला है कि जिन चूहों के पेन वाम लगाया गया, उनकी नाक व फेफड़ों में जुकाम, खांसी के विषाणुओं को समाप्त करने की प्राकृतिक सामर्थ्य वहुत कम हो गयी थी। जव कि अन्य चूहों ने, जिनके पेम वाम नहीं लगाया गया था, ९५ प्रतिशत विषाणुओं को नाक व फेफड़ों तक पहुंचते ही समाप्त कर दिया।" अभी मनुष्यों पर पेन बाम की प्रतिक्रिया का अध्ययन नहीं किया गया है। परन्तु यह सभी जानते हैं कि जो वालक व व्यक्ति वन्द मकानों में रहते हैं और कपड़ों से दवे-ढंके रहते हैं उनके जुकाम-खांसी वहुत जल्दी हो जाता है और जो वालक व व्यक्ति खुले में रहते हैं और जो पूरे कपड़े भी नहीं पहनते, उनके जुकाम-खांसी वहुत देर से असर करते हैं।

आज कल टूथपेस्ट से दांत साफ़ करने का रिवाज वढ़ता जा रहा है। इस सम्वन्ध में एक रोचक तथ्य की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं। कुछ दिन हुए अमरीका में डैनटिस्ट एसोसियेशन कांग्रेस का जलसा हुआ था, जिसमें वहुत से ख्याति प्राप्त दांतों के डाक्टर सम्मि-

लित हुए थे। जब उन डाक्टरों के दांतों की जांच की गयी तो ९५ प्रतिशत डाक्टरों के दांतों में कोई न कोई रोग पाया गया। यह तो स्वाभाविक ही है कि ये सब डाक्टर टूथपेस्ट से ही अपने दांत साफ़ करते होंगे।

इसके विपरीत यह भी देखा गया है कि जो व्यक्ति दांतुन से या किसी देशी दन्त मंजन से अपने दांत साफ़ करते हैं, उनके दांत अधिकांश में नीरोग और मजबूत पाये गये हैं।

आज कल की बनी हुई औषधियों पर ये कुछ निष्कर्ष हैं जो हमने उदाहरण स्वरूप दिये हैं। यह सभी जानते हैं कि आधुनिक शरीर-विज्ञान की इतनी उन्नति होने पर भी रोगियों की संख्या में कोई कमी नहीं हो रही है, न जन-साधारण के स्वास्थ्य में ही विशेष उन्नति हुई है। कुछ विशेष रोग अवश्य कम हुए हैं, परन्तु उनका स्थान नये-नये रोगों ने ले लिया है। इसका कारण यही है कि मनुष्य शरीर पर आधुनिक औषधियों की प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं होती। वे एक रोग को कुछ समय के लिये अवश्य दवा देती हैं, (जड़ से नष्ट नहीं करतीं) परन्तु उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप कई नये-नये रोग शरीर में पैदा हो जाते हैं। वास्तव में आधुनिक औषधियां समय की कसौटी पर खरी नहीं उतर रही हैं।

तथ्य तो यह है कि प्रकृति ने स्वयं ही हमको रोगों से लड़ने की शक्ति दी है। परन्तु हम अपनी अज्ञानता और आधुनिकता के मोह के कारण उस प्राकृतिक शक्ति को स्वयं ही नष्ट कर रहे हैं। अधिक अच्छा यही होगा कि हमें दवाओं पर निर्भर न रह कर अधिकतर प्रकृति पर ही निर्भर रहना चाहिए।

# अहिंसा व शाकाहार के सम्बन्ध में धर्म-शास्त्रों में लिखे हुए एवं महापुरुषों द्वारा कहे हुए विचार

"मैं मर जाना पसन्द करूंगा, परन्तु मांस कभी नहीं खाऊंगा। पशुओं का मांस खाना घोर नैतिक पतन है।"

"चाहे कुछ भी हो, धर्म हमें अण्डे, मछली, मांस खाने की आज्ञा विलकुल नहीं देता।"

"मैं मांस नहीं खाऊंगा, शराव नहीं पीऊंगा, पर-स्त्री संग नहीं करूंगा।"

—महात्मा गांधी

महात्मा वुद्ध स्वयं लंकावतार सूत्र में मांस भक्षण परिवर्तो नामक आठवें अध्याय में कहते हैं :—

"यह मांस दुर्गन्धमय है। मलेच्छों द्वारा सेवित है। आर्यजनों द्वारा त्याज्य है। आर्यपुरुष मांस और खून का आहार नहीं करते, क्योंकि यह अभक्ष्य और घृणा से भरा है।"

"मांस-भक्षण से साधुपना अथवा ब्राह्मणपना नष्ट हो जाता है। मांसाहारी दूसरे के प्राणों को जवरदस्ती लेने के कारण डाकू हैं।"

"जो प्राणी लोभ के वशीभूत होकर दूसरे के प्राणों को हरते हैं अथवा मांस की पैदावार वढ़ाने में धन का

योगदान करते हैं वे पापी हैं, दुष्ट हैं और रौरव नरक में जाकर महान् दुःख उठाते हैं।"

"मैं मानता हूं, जो व्यक्ति दूसरों का मांस खाता है वह सच्चमुच अपने बेटे का मांस खाता है।"

"मांस खाने से कोढ़ जैसे अनेकों भयंकर रोग फूट पड़ते हैं। शरीर में खतरनाक कीड़े व जन्तु पैदा हो जाते हैं, अतः मांस भक्षण का त्याग करें।"

"हे महामते ! मैं यह आज्ञा कर चुका हूं कि पूर्व ऋषि-प्रणीत भोजन में चावल, जौ, गेहूं, मूंग, उड़द, घी, तेल, दूध, शक्कर, खाण्ड, मिश्री आदि लेना ही योग्य है।"

"मैंने किसी भी सूत्र में मांस को सेवन योग्य नहीं कहा है और न खाने की ही आज्ञा दी है; न उसे उत्तम भोजन कहा है।"

विश्वप्रसिद्ध ग्रन्थ महाभारत में लिखा है :—

"हे अर्जुन ! जो शुभ-फल प्राणियों पर दया करने से प्राप्त होता है, वह फल न तो वेदों से, न समस्त यज्ञों के करने से और न किसी तीर्थवन्दन अथवा स्नान से हो सकता है।"

—महाभारत, शान्ति पर्व, प्रथम पर्व

"ये लोग जो तरह-तरह के अमृत से भरे शाकाहारी उत्तम पदार्थों को छोड़कर मांस आदि घृणित पदार्थ खाते हैं वे सचमुच राक्षस की तरह दिखाई देते हैं।"

"जो दूसरों के मांस से अपना मांस बढ़ाना चाहता है उस निर्दयी से बढ़कर कोई क्षुद्र व्यक्ति नहीं है।"

—महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय ११६

मनुस्मृति में लिखा है :—

"मारने की सलाह देने वाला, मरे प्राणियों के शरीर

को काटने वाला, मारने वाला, मोल लेने वाला, वेचने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला और खाने वाला—ये सबके सब पापी और दुष्ट हैं।"

"जिसका मांस मैं यहां खाता हूं (मां) मुझको (स:) वह भी दूसरे जन्म में अवश्य खाएगा।"

—मनुस्मृति ५/५५

चाणक्यनीति में लिखा है :—

"मांस खाने वाले, शराव पीने वाले, विना पढ़े-लिखे, मूर्ख पुरुष, पशु के समान होते हैं। इनसे धरती माता सदैव दुखी रहती है।"

स्वामी दयानन्दजी सरस्वती के विचार हैं—

"मांस का प्रचार करने वाले सब राक्षस के समान हैं। वेदों में कहीं भी मांस खाने का उल्लेख नहीं है।"

—सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास १२

"शरावी और मांसाहारी के हाथ का खाने में भी शराव, मांसादि के खाने-पीने का दोष लगता है।"

"जो लोग मांस और शराव का सेवन करते हैं उनके शरीर, वीर्य आदि धातु दुर्गन्ध के कारण दूषित हो जाते हैं।"

—सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास १०

"हे मांसाहारियों! जव कुछ काल पश्चात् पशु न मिलेंगे तव तुम मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे या नहीं।"

—स्वामी दयानन्दजी सरस्वती, गौ करुणानिधि

"गऊ आदि पशुओं का नाश होने से राजा और प्रजा दोनों का नाश हो जाता है।"

—स्वामी दयानन्दजी सरस्वती
"गो रक्षा ही राष्ट्र रक्षा है"

"जो लोग अण्डे, मांस खाते हैं, मैं उन दुष्टों का नाश करता हूं।" —अथर्ववेद, काण्ड ८, वर्ग ६, मन्त्र १३

"हे अग्नि ! मांस खाने वालों को अपने मुँह में रख।"

—ऋग्वेद १०-८७-२

"हे मित्र ! जो पशु का मांस खाते हैं उनके सिर फोड़ डालो।"

—ऋग्वेद १०-८७-१६

गुरु नानक देव के विचार हैं—

"सब राक्षस जैसे क्रूर पुरुषों को प्रभु का नाम जपाया। उनसे मांस खाने की आदत छुड़वाई। उन राक्षस पुरुषों ने जीवों को वध करने की आदत छोड़ दी। सच कहा है महात्माओं की संगति सुख देने वाली होती है।"

—नानक प्रकाश (पूर्वार्ध-अध्याय ५५
देथलूत राक्षस का प्रसंग)

"हम तुम्हारे यहां भोजन कदापि नहीं कर सकते, क्योंकि तुम सब जीवों को दुख देने वाले हो। सबसे पहले तुम मांस खाना छोड़ो, जिस कारण तुम्हारा जीवन नष्ट हो रहा है। दुख देने वाली तामसी वृत्ति को छोड़कर सुखकारी प्रभु की भक्ति में लग जाओ।"

—(नानक प्रकाश, पूर्वार्ध, अध्याय ५५)

"कपड़े पर खून लगने से कपड़ा गन्दा हो जाता है। वही घृणित खून जब मनुष्य पीवेगा तब उसकी चित्त-वृत्तियां अवश्य ही दूषित हो जायेंगी।"

—गुरु नानक देव, वार मांझ, महल्ला-१

"जीवों पर दया करना सबसे बड़ा धर्म है। वह पुरुष उत्तम है जो दूसरों पर दया करता है।"

—मांझ महल्ला-५ बारां माह (माघ माह)

"जो व्यक्ति मांस, मछली और शराव का सेवन करते हैं उनका धर्म, कर्म, जप, तप, सव कुछ नष्ट हो जाते हैं।"

—गुरु ग्रन्थ साहव

"यदि जीवों का वध करने में धर्म है तो हे भाई! पाप किसे कहेंगे? यदि जीव-वध करने वाला अपने आपको मुनि समझे तो कसाई किसे कहेंगे।" —कवीर वाणी

ईसाई धर्म का उपदेश है—

"किसी प्राणी की हत्या मत करो।"

—प्रभु की पांचवीं आज्ञा

"जव तुम्हारे पिता-प्रभु दयालु हैं तव उसकी सन्तान तुम भी दयावान वनो, अर्थात् किसी को मत सताओ।"

—(सेण्ट ल्यूकस, न्यू टैस्टामेंट ३६-६)

"देखो मैंने पृथ्वी पर सव प्रकार की जड़ी-वूटियां तथा उनके वीज दिये हैं और साथ में तरह-तरह के फलों से लदे पेड़-पौवे भी दिये हैं तथा उनके वीज भी—उन सव शाकाहारी पदार्थों को खाओ, वे तुम्हारे लिए मांस का काम देंगे।" —(Genesis—Chap. 1-297)

"तुम मेरे पास सदैव एक पवित्र आत्मा होओगे यदि तुम किसी का भी मांस न खाओ।"

पारसी धर्म में भी पशु हिंसा का निषेध है—

"इस तरह जो कोई किसी पशु को मारेगा उसको परमात्मा स्वीकार नहीं करेगा। पैग़म्वर एसफंदरमद ने कहा है—हे पवित्र मानव! परमात्मा की यह आज्ञा है कि पृथ्वी का मुख रुधिर, मैल व मांस से पवित्र रक्खा जाये।"

—(जरतुश्तनामाद्र—६५)

मुसलिम धर्म में भी हिंसा का निषेध है—

The Koran, translated from Arabic by Rev. James Rodwell, M.A., London—1924-(607) S-22. By no means can this flesh reach into God neither their blood but piety on your part reaches there.

किसी भी तरह का मांस परमात्मा को नहीं पहुंचता है न उनका रक्त। परन्तु जो कुछ दया तुम पालोगे वही वहां पहुंचती है।

—कुरान शरीफ़, पारा १७, सुराहज, रुक ५, आयत ३८

(24) S.80. Let man look at his food. It was we who rained down the copious rains, ......and caused the upgrowth of the grain and grapes and healing herbs and the olive and the palm and enclosed gardens thick with trees, fruits and herbage, for the service of yourselves and your cattle (20—40).

मानव को भोजन पर ध्यान देना चाहिए। हमने बहुत पानी बरसाया, अनाज, अंगूर, औषधियां, खजूर आदि उगवाये, उनके चारों तरफ वृक्षों से, फलों से व वनस्पतियों से घने भरे हुए बाग लगवाये, तुम्हारी और तुम्हारे पशुओं की सेवा के लिये।

# मनुष्य जन्म की सार्थकता

हम अनादि काल से विभिन्न योनियों में शरीर धारण करते हुए सुख और दुख भोग रहे हैं। इन सुख व दुख भोगने के लिये हमारे द्वारा पूर्व में किये हुए अच्छे व बुरे कार्य ही उत्तरदायी हैं। ये अच्छे व बुरे कार्य हम अपने अनादिकालीन अज्ञान और हिंसा, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि की भावनाओं के कारण ही करते रहते हैं। यदि हमको सुख व दुख भोगने से छुटकारा पाकर, अनन्त और सच्चा सुख प्राप्त करना है तो हमको अपना अज्ञान तथा इन क्रोध, मान, माया, लोभ आदि की भावनाओं को छोड़ना पड़ेगा। मनुष्य योनि के अतिरिक्त पशु-पक्षियों की योनियों में न तो हम में इतनी शक्ति होती है और न इतना ज्ञान व विवेक, कि हम अपना अच्छा व बुरा सोच व समझ सकें। संसार में लाखों योनियों में केवल मनुष्य योनि ही ऐसी योनि है जब हम अपना भविष्य सुधारने और सच्चा सुख प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकते हैं। इस मनुष्य जन्म में भी अपनी भलाई की बात सुनने व जानने का अवसर कितने मनुष्यों को मिलता है? यदि भलाई की बात सुनने का अवसर मिल भी जाये, तो उस बात को सुनने, समझने तथा उस पर आचरण करने का प्रयत्न कितने व्यक्ति करते हैं? फिर इन प्रयत्न करने वालों में भी कितने व्यक्तियों को इतनी सुविधा व साधन उपलब्ध

होते हैं जो अपने मन, वाणी व कार्यरूप से उस बात पर आचरण कर लेते हैं। इतनी सब अनुकूलताएँ उपलब्ध होने पर भी यदि हम अपना भविष्य नहीं सुधारते और मुक्ति प्राप्त करने के मार्ग पर अग्रसर नहीं होते तो हमसे अधिक अभागा और मूर्ख कौन होगा? पैदा होना, खाते-पीते रहना, इन्द्रियों के विषय सेवन करते रहना और अन्ततः मर जाना—क्या यही मनुष्य जीवन की उपलब्धि है? ये सब कार्य तो पशु-पक्षी भी कर लेते हैं। फिर मनुष्य में और पशु-पक्षी में क्या अन्तर रहा? वास्तव में यह मनुष्य जन्म तो उस जंकशन अथवा चौराहे के समान है, जहां से हम जिधर भी चाहें, जा सकते हैं। मनुष्य जन्म प्राप्त कर हम इस संसार तथा अपनी आत्मा का सच्चा स्वरूप जानकर हिंसा, राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, मान, माया, लोभ आदि की भावनाओं का त्याग कर, संयम व तप के द्वारा अपने कर्मों को नष्ट करके, अपनी आत्मा के कल्याण की ओर—मुक्ति की ओर—भी अग्रसर हो सकते हैं और इसके विपरीत अपने अज्ञान और अपनी राग-द्वेष की भावनाओं के कारण चिरकाल के लिये पशु-पक्षी आदि की नीच योनियों में भी गिर सकते हैं। एक बार इस मनुष्य योनि को व्यर्थ गंवा देने पर न जाने कितने काल के पश्चात् हमें यह मनुष्य जन्म फिर से प्राप्त हो?

एक बात और, हमें इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि अभी तो हम स्वस्थ व जवान हैं, मृत्यु के आने में अभी बहुत समय है, अतः बुढ़ापा आने पर धर्म-कर्म की बातें सोच लेंगे। इसके विपरीत हम यह निश्चित समझ लें कि मृत्यु का कोई समय नियत नहीं होता। वह बुढ़ापे में भी आ सकती है और जवानी में भी। अतः हमको निश्चिन्त

होकर नहीं बैठना चाहिए, अपितु हर समय मृत्यु के स्वागत के लिये तैयार रहना चाहिए। मृत्यु के आने के समय हमें यह पश्चाताप नहीं हो कि कुछ समय और मिल जाता तो हम अपने आत्म-कल्याण के लिये कुछ कर लेते। अतः मनुष्य जन्म की सार्थकता इसी में है :

—कि हम सदैव शुद्ध, सात्विक व शाकाहारी भोजन ही सेवन करें, जिससे हमारा शरीर, मन व बुद्धि सदैव स्वस्थ बने रहें,

—कि हम किसी भी जीव को किसी भी प्रकार का कष्ट देने का विचार भी अपने मन में न लावें,

—कि हम सदैव परोपकार में लगे रहें,

—कि हम इस संसार, अपने शरीर व आत्मा की वास्तविकता को जानकर सदैव अपनी आत्मा के कल्याण में तत्पर रहें।

# जैन प्रतीक

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

यह चिह्न **जैन प्रतीक** है, जिसको समस्त जैन समाज ने एक मत से स्वीकार किया है।

सबसे बाहर जैन मान्यता के अनुसार त्रिलोक का आकार दिया गया है। स्वस्तिक का चिह्न चतुर्गति का प्रतीक है। स्वस्तिक के ऊपर तीन बिन्दु त्रिरत्न के द्योतक हैं, जो सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र को दर्शाते हैं। त्रिरत्न के ऊपर अर्द्ध-चन्द्र, सिद्ध-शिला को लक्षित करता है। अर्द्ध-चन्द्र के ऊपर एक बिन्दु है जो मुक्त जीव का द्योतक है। स्वस्तिक के नीचे जो हाथ दिया गया है वह अभय का बोध देता है तथा हाथ के बीच में जो चक्र दिया गया है वह अहिंसा का धर्म-चक्र है। चक्र के बीच में अहिंसा लिखा हुआ है। त्रिलोक के आकार में प्रतीक का स्वरूप यह बोध देता है कि चतुर्गति में भ्रमण करती हुई आत्मा अहिंसा धर्म को अपनाकर सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान एवं सम्यक्-चारित्र के द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकती है।

प्रतीक के नीचे जो संस्कृत वाक्य "**परस्परोपग्रहो जीवानाम्**" दिया गया है—इसका तात्पर्य है, "जीवों का परस्पर उपकार"।

प्रतीक में जैन दर्शन का यह सूत्र युग-युग से सम्पूर्ण जगत् को शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है।

इस प्रतीक से समूचे जैन शासन की सुन्दर अभिव्यक्ति मिलती है।

सचमुच में यह प्रतीक हमें संसार से ऊपर उठकर मोक्ष के प्रति प्रयत्नशील होने का पाठ पढ़ाता है।

# मेरी भावना

(लेखक—स्वर्गीय श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर')

(सच्चे देव का लक्षण और उनकी भक्ति में लीन रहने की भावना)

जिनने राग द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया,
सब जीवों को मोक्ष-मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उनको स्वाधीन कहो,
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उन्हीं में लीन रहो ॥१॥

(सच्चे साधु का लक्षण और उनका सत्संग करते रहने की भावना)

विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं,
निज पर के हित साधन में जो, निश दिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं ॥२॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्य्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।

(पांचों पाप व अन्य दुष्प्रवृत्तियों को त्यागने की भावना)

नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूं,
परधन-वनिता पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूं ॥३॥
अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं,
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्षा भाव धरूं।

(परोपकार करने की भावना)

रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं,
बने जहां तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूं ॥४॥

(समस्त जीवों से मैत्री रखने की भावना)

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे,
दीन दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे।
दुर्जन, क्रूर, कुमार्ग-रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ॥५॥

(गुणी जनों की सेवा करने और उनके गुण ग्रहण करने की भावना)

गुणी जनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥६॥

(न्याय-मार्ग पर दृढ़ रहने की भावना)

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
अनेक वर्षों तक जीऊं, या मृत्यु आज ही आ जावे।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे,
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पावे ॥७॥

(समता भाव रखने तथा निडर व सहनशील बनने की भावना)

होकर सुख में मगन न फूलें, दुख में कभी न घबरावें,
पर्वत नदी श्मशान भयानक, अटवी से नहीं भय खावें।
रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे,
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, सहनशीलता दिखलावे ॥८॥

(समस्त जीवों के सुखी व धर्मनिष्ठ होने की भावना)

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे,
बैर, पाप, अभिमान छोड़कर, नित्य नये मंगल गावे।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञानचरित उन्नत कर अपना, मनुज-जन्मफल सब पावें ॥९॥

ईत भीत व्यापे नहीं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।
रोग, मरी, दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे,
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे ॥१०॥

फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहीं, कोई मुख से कहा करे।
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें,
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से, सब दुःख संकट सहा करें ॥११॥

# आत्म निवेदन

आपने इस पुस्तक का अवलोकन किया। यदि आपको यह पुस्तक उपयोगी लगी हो, तो कृपा करके आप अपने मित्रों व सम्वन्धियों से इसे पढ़ने का अनुरोध अवश्य करें। इस पुस्तक को अलमारी में वन्द करके न रखें, अपितु अन्य सज्जनों को पढ़ने के लिये दें तथा अपने नगर के मन्दिरजी व वाचनालय में रख दें जिससे इस पुस्तक का अधिक से अधिक उपयोग हो सके। यदि और पुस्तकों की आवश्यकता हो तो हमें पत्र लिख दें, हम आपको और पुस्तकें निःशुल्क भेज देंगे।

यदि आप इस पुस्तक को और भी अधिक उपयोगी तथा रोचक वनाने के लिये कोई सुझाव दे सकें तो आपके सुझावों का सहर्ष स्वागत है। अगले संस्करण में उन सुझावों का समुचित उपयोग करने का प्रयत्न करेंगे।

यदि किन्हीं महानुभाव को पुस्तक के किसी भी विषय के सम्बन्ध में कोई शंका हो, तो हमें अपनी शंका अवश्य लिखें, हम उनकी शंकाओं का लेखक द्वारा समाधान कराने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे।

सन १९७३ में हमने **'सच्चे सुख का मार्ग'** नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। इस पुस्तक में आत्मा के अ... पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त, सच्चा सुख तथा उसके ... के मार्ग पर तर्क सम्मत एवं वैज्ञानिक आधार ...

किया गया है। इस पुस्तक की जैन व अजैन पत्रिकाओं तथा पाठकों द्वारा वहुत सराहना होने, अतः पर्याप्त मांग होने के कारण, इसका पहला संस्करण वहुत जल्द समाप्त हो गया। अव हमारा इस पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित करने का विचार है। जिन पाठकों की इस विषय में रुचि हो वे हमें एक पोस्टकार्ड पर साफ़ व सुन्दर अक्षरों में, (हिन्दी अथवा अंग्रेज़ी भाषा में) अपना नाम व पूरा पता (पूरा नाम, मकान नं०, मोहल्ले का नाम, नगर का नाम (नगर के नाम के नीचे लाइन लगा दें), पिन कोड नं०, डाकखाने का नाम, जिले का नाम, प्रदेश का नाम) लिखकर भेज दें। प्रकाशित होने पर हम उनको यह पुस्तक निःशुल्क भेज देंगे।

प्रकाशक
(प्रेम रेडियो एण्ड इलेक्ट्रिक मार्ट)
महालक्ष्मी मार्केट, भगीरथ पैलेस,
चांदनी चौक, दिल्ली-६